THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

बौद्ध तथा जैनधर्म

[धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के परिप्रेक्ष्य मे तुलना मक अध्ययन]

डा महेन्द्रनाथ सिंह
एम ए पी एच डी
प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग
उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

BAUDDHA TATHA JAIN DHARMA
BUDDHISM AND JAINISM

A Comparatıve Study of
Dhammapada and
Uttaradhyayan Sutra

by

Dr M N Sıngh

1990

ISBN 81 7124 036 4

The publıcat on of th s book w financ ally support d by
the Indıan Cou cıl f H stor cal Research Delhı and
the respo s b lıty for th f ts st ted pı ons
p essed o ncl s ons rea hed
ntırely that of the uthor d the
I d an (ouncıl of H storıcal
Resear h h no
respons b l ty

प्रथम सस्करण १९९ ई
मल्य ११ रुपये

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी
मुद्रक
शीला प्रिण्टस लहरतारा वाराणसी

पूज्य माता पिता

के

श्रीचरणो मे

सादर

प्राक्कथन

सभ्यता के इतिहास म धर्म का बहुत ही महत्त्वपूण स्थान रहा ह। इहलोक और परलोक दोनों से सम्बन्धित जीवन के प्राय सभी कायकलाप धर्म से प्रभावित होत रहे हैं। लोकतात्रिक भावना विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने अवश्य इसके प्रभाव म कमी की है लेकिन आज भी बहुत से देशो म धम का यापक प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। हमारे देश म भी जीवन के प्राय सभी क्षत्र धम से प्रभावित हुए ह। सभी धम जीवन के परम उद्दश्य की प्राप्ति पर बल देते हैं और उसीको दष्टिगत रखकर समाज के सघटन और उसके काय क्षत्र का निर्धारण करते ह। भारत म प्राचीन ब्राह्मण धम के दाशनिक और आचार-सम्बधी विचारो ने भारतीय जीवन को जो विशिष्टता प्रदान की वह तिहास का क अ य त महत्त्वपूण तथ्य ह। आध्यात्मिक मा यताओ सामाजिक तथा राजनो तक सिद्धा तो और सास्कृतिक जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पडा ह। इसके साथ ही उ लेखनीय ह कि काल और परिस्थितियाँ जिनम धर्मों का ज म होता ह सदा अपरिवतनीय नही रहती। इसी कारण बदलते हुए परिवश म आवश्यक परिवतन लान के लिए सामाजिक और धार्मिक आ दालनो की आवश्यकता पडती ह। पर तु कट्टरपथी धम के मल सिद्धा तो को सावकालिक मानकर उनका विरोध करने म नही चकत जिसके कारण कुछ देशो को क्रा ति का माग ग्रहण करना पडा।

प्राय सभी धर्मों म जगत के स्रष्टा के रूप म ईश्वर के अस्ति व और मोक्ष प्राप्ति के साधनो का विधान है। प्राचीन ब्राह्मण धम म पुनज म कमवाद यज्ञ कमकाड और वण यवस्था आदि का काफी महत्त्व है। परन्तु ई पू छठी शताब्दी तक आते-आत वण यवस्था सामाजिक असमानता का कमकाड एव यज्ञ हिंसा और अनावश्यक धार्मिक कृत्यो का और ईश्वरवाद एक बाह्यशक्ति पर निभरता का द्योतक बन चका था। इन परिस्थितियो म जनधम और बौद्धधम ने प्राचीन धार्मिक मुख्यधारा से बहुत सी बातो म अपनी अलग पहचान बनाकर नय मागदशन की आवश्यकता पर जोर दिया। विभिन्नताओ के बावजद दोनो म दु ख की सव यापकता उसका कारण उसके निरोध का माग और जीवन का परम उद्देश्य —मोक्ष अथवा निर्वाण—एसे विषयों पर प्रतिपादित उनके सिद्धा तो म काफी समानता ह। जाति-पाँति ईश्वरवाद याज्ञिकी हिंसा और कमका ड का विरोध तथा आन्तरिक शुद्धि एव सदाचार पर जोर धार्मिक क्षेत्र में वस्तुत क्रान्तिकारी विचार थ। सामाजिक असमानता पर प्रहार और अनीश्वर वादी दर्शन के आधार पर मनुष्य का अपने भाग्य का स्वय विधाता का सिद्धा त

चनौतीपूण विचार थे। यद्यपि काला तर म बौद्धधम इस देश से लप्त हो गया और जनधम भी कुछ क्षत्रो तक सकुचित रह गया उनके सिद्धा त निस्सदेह सार्वकालिक महत्त्व के हैं। स य अहिंसा अपरिग्रह सदाचार और समानता की भावना की प्रासगिकता असदिग्ध ह।

डॉ मह द्रनाथ सिंह द्वारा लिखित पुस्तक बौद्ध तथा जनधर्म दोनो का एक तुलनात्मक अध्ययन ह। कहने की आवश्यकता नही कि इन धर्मों का अध्ययन अनेक विद्वानो ने किया है और इन पर एक विशाल साहि य उपल ध ह। परन्तु लेखक ने मुख्यत अपने को धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र पर केन्द्रित कर दोनो धर्मों के मल सिद्धान्तो का गहराई से अध्ययन किया ह। इन ग्र थो से पर्याप्त उद्धरण देकर और अन्य स्रोत सामग्री का यथोचित उपयोग कर डा सिंह न पुस्तक को विश्वसनीय और उपयोगी बनाया है। दोनो धर्मों के दाशनिक सिद्धा तो औ उनकी आचार सहिताओ की विवेचना बड ही सन्तुलित ढग से की गयी ह। प्राय सभी अध्यायो म उनको समानताओ और असमानताओ को दर्शाया गया ह। कम धम अर्हत निर्वाण पाप-पुण्य भावना या अनुप्रक्षा आदि विषयो का विस्तारपूवक विवेचन किया गया ह।

हम आशा ह कि यह पुस्तक भारतीय धर्मों के अध्ययन म विशेष रुचि लेनेवाले और सामा य पाठक दोनो के लिए पयोगी होगी।

—हीरालाल सिंह
भतपूव प्रोफसर एव अध्यक्ष
इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी
२ अगस्त १९८९

बौद्ध तथा जैनधर्म

भारतीय चिन्तन और सदाचार के इतिहास म बौद्ध और जन परम्पराओं का विशेष महत्त्व है। हिन्दू जीवन की रूढियो और विश्वासो का प्रत्याख्यान करते हुए बद्ध के विचार स्वतन्त्र धर्म के रूप म स्थापित हुए। उनकी उक्तियाँ शनै शनै इस तरह विकसित हुइ कि बद्ध के अनुयायियो ने न केवल अपने सघो और विहारो का विकास किया बल्कि निश्चित प्रकार की दाशनिकता तकशास्त्र तथा आचारशास्त्र का भी पूरी तरह विकास किया। बौद्धधर्म दशन साधना और आचार तीनो क्षत्रों में इतना प्रभावशाली हुआ कि आधी दुनिया पर उसका साम्राज्य छा गया। इसके साथ ही एक जन भाषा भी इस धम की भाषा के रूप म विकसित हुई। ब्राह्मण धम-व्यवस्था के पास यदि वदिक और सस्कृत जसी दो भाषाय थी और वेद स्मृति तथा उपनिषद जसे शास्त्र थे तो बौद्धो के पास पालि जसी भाषा थी पिटक थ निकाय थे और धम्मपद था। ब्राह्मण धम-व्यवस्था के पास ऋषि मुनि आश्रम कुटी मन्दिर तपस्वी साध और योगी थ तो श्रमण धम व्यवस्था के पास मठ विहार आराम (बगीचे) भिक्ष तान्त्रिक और चमतकारी धम प्रचारक थे। भाषा दशन एव सगठन तीनो के कारण बौद्धधम ब्राह्मणधम को निष्प्रभ करन म सफल रहा। ठीक इसी तरह जैन धम का उद्भव एक ऐसे विचारक तपस्वी की चिन्ता से हुआ था जो ब्राह्मणधम की रूढियो से प्रसन्न नही था। ब्राह्मण शास्त्रो की व्यर्थता भगवान् म ावीर के मस्तिष्क म थी। जितेन्द्रिय महावीर ने जिस चिन्तन का सूत्रपात किया था उसे दर्शन तकशास्त्र और साधक मुनिम डल का सहयोग मिला। मन्दिर मर्ति शास्त्र और मुनियो के साथ जैनधम के पास बौद्धो की तरह एक निजी अभिव्यक्ति की भाषा भी थी। इस भाषा को जन प्राकृत कहा जाता है। इसीलिए जनधम के अनुयायियों ने भी ब्राह्मण व्यवस्था का पूरी तरह से उत्तर दिया और उसे निष्प्रभ बनाया। बौद्धधम को राजशक्ति का समथन मिला उसी तरह जनधम को भी राजाओ तथा श्रेष्ठियो का समथन मिला। इस तरह बौद्ध तथा जैन दोनो धम-व्यवस्थाय ब्राह्मण यवस्था के समानान्तर खडी हुइ। इन स्पर्धी यवस्थाओ न अपने धर्मशास्त्रो से श्रीमद्भगवदगीता के समानान्तर दो पुस्तको का प्रचारतन्त्र भी विकसित किया। गीता में १८ अध्याय हैं तो बौद्धधम के धम्मपद म २६ वग्ग हैं। इसी तरह जनों का धमग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र खडा हुआ। इसमें भी ३६ अध्ययन हैं। इस तरह यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बौद्ध तथा जैनधम ब्राह्मण चिन्तन की शाखायें नहीं हैं बल्कि समानान्तर धम-व्यवस्थाय हैं और इनका

विकास ब्राह्मणधम के विरोध म स्पर्धी चिन्ता से हुआ है । इसी स्पर्धा म सस्कत शास्त्र श्रीमदभगवदगीता के समानान्तर पालिशास्त्र ध मपद और प्राकतशास्त्र उत्तरा ध्ययनसूत्र का सकलन और प्रचारण विकसित हुआ ।

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के मह त्व को बहुत अलग से देखने की जरूरत है । जब कोई सगठन चाह वह धार्मिक या साम्प्रदायिक हो अपने पूरे बल के साथ खडा होता ह तो उसके पास एक निश्चित जनभाषा का आधार होना चाहिए । साध और कायकर्त्ता होना चाहिए । सभाकक्ष मठ मन्दिर विहार बगीच म न्दिर और देवघर भी होन चाहिए । इसके साथ ही उसके पास प्रचलित धमपुस्तिका भी होनी चाहिए । सवग्रासी और सवव्यापी ब्राह्मणधम के समानान्तर यदि बौद्ध और जन धर्मों न अपनी पहचान बनायी तो वह इसी सामजस्य शक्ति के कारण बनी । य दोनो धम-व्यवस्थाय तभी दुबल हुइ जब इन्होन जनभाषा साध तापस बल आश्रम और मठ तथा अपना निश्चित आचार छोड दिया । बाद म अनक बौद्ध ग्रन्थ सस्कत म लिखे जाने लगे । इसी तरह परवर्ती जैन-साहि यो की भाषा सस्कत हो जाती ह । सस्कत का सूत्र ग्रहण करना बौद्ध और जैनों की पहली पराजय ह । इनकी दूसरी पराजय तब होती ह जब इनके साध और तपस्वी आश्रमो विहारो तथा आरामो म स्थायी रूप से ठहरन लगते हैं चलना छोड देत हैं । गुफाओ म रुककर चित्र बनाने लगते हैं और मठो म बैठकर मर्तियाँ और देवना गढन लगते ह । अजन्ता और एलोरा के ऐतिहासिक अवशेष यह स्पष्ट सकेत करत ह कि भिक्षचर्या म चलना माँगना घमना क्रमश कम हुआ और भिक्ष साव कलाजीवी साधक बनन लग । बौद्धधर्म के साधना ग न्थो से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्ष गुप्त स्थानो म निवास करने लगे और क्रमश त त्र वज्र कील म त्र और अ तत अभिचार यभिचार से बौद्धो का सम्ब ध बढता चला गया । जनो के साथ भी एसा ही कुछ हुआ और धीरे धीरे ब्राह्मण धम-व्यवस्था न बौद्ध धम व्यवस्था से लडकर श यवाद को अद्वतवाद के रूप म बदलकर यथावसर शस्त्र से और मख्यत घणा प्रचार से बौद्धधर्म को वस्त कर दिया । मुझ तो यह भी लगता ह कि घणा बढ जान के बाद बुद्ध मूर्त्तियो को तोडने और श्रमणो को नृशस ढग से मारने की परम्परा पुरोहित धम यवस्था का एक निश्चित कारक बन गयी थी । बुद्ध को तोडन की जो परम्परा शरू हुई उसे ही तुर्कों ने भी आग बढाया । तुर्कों ने बुत के बहाने बुद्ध को ही तोडा । यह एक पूण नियोजित काय क्रम था जिसे पुरोहित धम के सचालक चला रहे थे । बुद्ध और बत एक ही शब्द क दो रूप हैं । इसलिए इन सारी टटी हुई मर्तियो वस्त जमीदोज आश्रमो विहारो और बुद्ध-तीर्थों के लिए तुर्कों को ही नही ब्राह्मणों को भी स्मरण किया जाना चाहिए । अनक स्थानो पर जन-मर्त्तियो को तोडकर जो हिन्दू मर्त्तियाँ स्थापित की

गयी हैं उनके पीछे छिपी जैन-ब्राह्मण-सघष की कोई अनकही कहानी सामने लायी जा सकती है।

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र का अध्ययन गीता से सम्बद्ध करके किया जाना चाहिए। क्योकि ये तीनों पुस्तक तीन धम व्यवस्थाओ–बौद्ध जैन और ब्राह्मण धम का मुख भाष है। तीनो की अपनी एकजातीय सस्कृति है। साथ ही तीनों के पीछे निजी भाषिक मिथक और अभिव्यक्ति-उच्चरण हैं। तीनो के पीछे सोचती-बोलती रहनेवाली तीन परस्पर सवादी धम-जातियाँ भी हैं। तीनो का रक्त एक है लेकिन तीनो को एक-दूसरे की चुनौती रक्त पिपासा की सीमा तक उत्तजित करती हैं। भाषा का टकराव रीति रिवाजो का टकराव एक दूसरे का एक दूसरे में समा जाना एक दूसरे से अलग होना फिर एकाकार हो जाना मिल जुलकर जाति-चरित्र से सम्बन्धित अनेक रहस्य समेटे हुए हैं। इसीलिए गीता धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र का अध्ययन तुलनात्मक और व्यतिरेकी स दर्भों म खास महत्त्व रखता है। मुझे यह देखकर सुखद आश्चय हुआ है कि प्रतिभाशील तरुण अन्वेषक डॉ महेन्द्रनाथ सिंह ने बहुत उपयुक्त समय पर धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र का सास्कृतिक विश्लेषण प्रारम्भ किया ह। डॉ सिंह मुख्यत इतिहास के विद्वान् हैं लेकिन उन्होंने बडी दिलचस्पी के साथ तत्त्वमीमासा और धार्मिक सिद्धान्त जसे सूक्ष्म प्रश्नो पर भी गहराई से विचार किया ह। उनकी अध्ययन प्रणाली एक शास्त्रगत अन्वेषक की है। वे डॉ एस अ तकर डा वासुदेवशरण अग्रवाल डा अजयमित्र शास्त्री डॉ जे एन तिवारी डॉ सागरमल जन और डॉ सुदशनलाल जैन की परम्परा के विद्वान् हैं। इस परम्परा के विद्वानो की विशेषता यह होती है कि वे मुख्य विषय से सम्बन्धित सारी सामग्री एव सूचनाओ को परिश्रमपूवक एकत्र करते हैं और उन्हें एक निश्चित क्रम मे उद्धृत करत हुए अज्ञात अश्रुतपूव को सामने कर देते हैं। डॉ महेन्द्रनाथ सिंह ने अपनी गुरु-परम्परा से काफी कुछ सीखा है और उनकी पुस्तक से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने न केवल पूव अध्यताओं का पूरा उपयोग किया है ब कि धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययन के साथ-साथ बौद्ध तथा जैन मलग्रन्थों का भी परिश्रमपूवक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के निष्कष बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जो लोग बौद्ध और जैन-तत्त्वमीमासा और धम सिद्धान्तो से परिचित नही हैं वे लोग डॉ सिंह की पुस्तक से बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सार-सकलन तथ्यो की प्रस्तुति व्याख्या विश्लेषण और अर्थापन सभी दृष्टियो से महेन्द्रजी ने एक पण्डित-पोथी लिखी है।

मैं विश्वास करता हूँ और आशान्वित हूँ कि डॉ महेन्द्रनाथ सिंह आगे चलकर अपनी इस विद्या को श्रीमद्भगवद्गीता से भी सम्बद्ध करेंगे और सस्कत पालि और

उन्होंने अपने ध्यानगत ज्ञान को चतुरार्य सत्यों के रूप में व्यक्त किया दु ख दु खसमुदय दु खनिरोध तथा दु खनिरोध-माग । दु खनिरोध के लिए जिन उपायों को धम्मपद में बतलाया गया है वे ही प्राय उत्तराध्ययन में भी हैं अन्तर इतना ही है कि जहाँ बौद्ध दशन नैरात्म्य पर जोर देता है वहाँ उत्तराध्ययन उपनिषदों की तरह आत्मा के सद्भाव पर । उपयक्त चार बौद्ध सत्यो की तुलना उत्तराध्ययनसूत्र की जैन तत्त्व योजना से निम्न रूप में की जा सकती है धम्मपद का दु ख-तत्त्व उत्तराध्ययन के बन्धन-तत्त्व से दु ख-हेतु आस्रव से दु ख निरोध मोक्ष से और दु खनिरोध-माग (अष्टाङ्गिकमाग) सवर और निर्जरा से तुलनीय हो सकते हैं ।

आगे चलकर इसम शरण-गमन अहत-तत्त्व कर्म एव निर्वाण का विवेचन ह । बुद्ध धम और सघ की शरण को त्रिशरण कहते हैं । बौद्धधम में इनको त्रिरत्न माना गया है और प्रत्येक बौद्ध के लिए इनकी अनुस्मृति आवश्यक कही गयी है । बद्ध की अनुस्मृति का अथ है उनके अहत्व आदि गुणों का पुन पुन स्मरण । धम्मपद में बद्ध और उनकी स्मृति के ऊपर एक वग ही है । धम्म की अनुस्मृति को बद्ध की स्मृति से भी मह वपूण कहा गया है क्योकि धम के साक्षात्कार से ही बद्ध बद्ध बन थे । धम्मपद में धम्म पर भी एक अलग से वग ह । धर्म के प्रचार एव आध्यात्मिक साधना के अभ्यास के लिए बौद्ध अनुयायियों का सगठन ही सघ था । बद्ध सघ को धम द्वारा सचालित और अपन से भी बडा मानते थे । सघ के गुणो का बार-बार स्मरण सघानुस्मृति है और धम्मपद में इसे भी उतना ही आवश्यक माना गया है । त्रिशरण की बात उत्तराध्ययन में तो नही है किन्तु चतुर्विध शरण का उल्लेख आवश्यक सूत्र म है । सघ के महत्त्व का उल्लेख नन्दी-सूत्र में है । बौद्ध और जैन दोनों म आध्यात्मिक प्रगति के विभिन्न स्तरो की कल्पना है । सामान्यतया बौद्धधम में इनको क्रमश स्रोतापन्न सकृदागामी अनागामी एव अर्हत कहा जाता था । धम्मपद म इनका क्रमबद्ध उल्लेख तो नही है किन्तु अहत-तत्त्व का वणन है । इस ग्रन्थ के सातवें वग्ग का नाम अरहन्त वग्ग है और इसकी प्रत्येक गाथा म अहतो का वर्णन है । अहत्व का तात्पर्य साधक की उस अवस्था से है जिसमें तृष्णा राग-द्वेष की वृत्तियों का क्षय हो चुका हो और वह सभी सांसारिक मोह तथा बन्धनों से ऊपर हो । उत्तराध्ययन में भी वीतराग एव अरिहन्त जीवन का प्राय इसी रूप मे वणन है और उसे नैतिक जीवन का परम साध्य माना गया है । जैन और बौद्ध दोनो धर्मों को कमसिद्धान्त समान रूप से स्वीकाय है । जगत् के स्रष्टा और नियामक किसी ईश्वर की क पना अस्वीकार कर दोनों धम जीव की गति कम के ही अधीन मानते हैं । परन्तु दोनों के कुछ मौलिक अन्तर भी थे । बौद्ध कर्म को किसी नित्य शाश्वतकर्ता का व्यापार नहीं मानते थे । इसी प्रकार जहाँ बौद्ध कम को मूलत मानसिक संस्कार के रूप में ग्रहण करते थे वहाँ जैन उसे पौद्गलिक

मानते थे। धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययन से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

धम्मपद में यह उक्ति प्राप्त होती है कि मार्गों में अष्टांगिक मार्ग सर्वश्रेष्ठ है परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि शील समाधि और प्रज्ञा ये तीन ही दुःख विमुक्ति के मूल साधन हैं तथा अष्टांगिक मार्ग इसी साधन-त्रय का पल्लवित रूप है। उत्तराध्ययनसूत्र में मोक्ष के चार साधन कहे गये हैं दर्शन ज्ञान चारित्र और तप। जैन आचार्यों ने सम्यक चारित्र में ही तप का अन्तर्भाव कर परवर्ती साहित्य में त्रिविध साधना-मार्गों का विधान किया। जैन-दर्शन में यह रत्नत्रय नाम से प्रसिद्ध हुआ। तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि उत्तराध्ययन के सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान धम्मपद के समाधि और प्रज्ञा स्कन्ध के समकक्ष हैं। धम्मपद का शील स्कन्ध उत्तराध्ययन के सम्यक चारित्र में सरलता से अन्तर्भूत हो जाता है। वस्तुतः बौद्ध और जैनधर्म के आधार में मौलिक समानतायें हैं। बौद्धों के शील जैन व्रतों से सहज ही तुलनीय हैं। अहिंसा के सम्बन्ध में दोनों में किंचित दृष्टिभेद अवश्य था और तत्त्वमीमांसा के मौलिक अन्तर के कारण दोनों की ध्यान-पद्धतियों में भी असमानतायें थीं परन्तु दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण भेद यह था कि जहाँ जैनधर्म काय-क्लेश और कठोर तप पर बल देता था बौद्धधर्म अतिवर्जना और मध्यम मार्ग के पक्ष में था। धम्मपद और उत्तराध्ययन से इन तथ्यों की भी पुष्टि होती है। धम्मपद और उत्तराध्ययन दोनों में पुण्य-पाप की अवधारणायें प्रायः समान हैं। दोनों में याज्ञिकी हिंसा तथा वर्ण भेद की आलोचना है। दोनों सदाचरण को ही जीवन में उच्चता नीचता का प्रतिमान मानते हैं और ब्राह्मण की जन्मानुसारी नहीं अपितु कर्मानुसारी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। साथ ही दोनों में आदर्श भिक्षु यति के गुण प्रायः समान शब्दों में वर्णित हैं।

दोनों ग्रन्थों में प्राप्त चित्त अप्रमाद कषाय तथा तृष्णा आदि मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विवेचन है। साधारण रूप से जिसे जन-परम्परा जीव कहती है बौद्ध लोग उसीके लिए चित्त शब्द का प्रयोग करते हैं। उनके लिए चित्त कोई नित्य स्थायी स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। चित्त की सत्ता तभी तक है जब तक इन्द्रिय तथा ग्राह्य विषयों के परस्पर घात-प्रतिघात का अस्तित्व है। ज्योंही इन्द्रियों तथा विषयों के परस्पर घात प्रतिघात का अन्त हो जाता है त्योंही चित्त भी समाप्त या शान्त हो जाता है। बौद्धधर्म में चित्त मन और विज्ञान को प्रायः एक ही अर्थ का माना गया है। जैन दृष्टिकोण से जिसके द्वारा मनन किया जाता है वह मन है। उत्तराध्ययन के अनुसार मन भी एक प्रकार का द्रव्य है जिसके द्वारा सुख-दुःख की अनुभूति होती है। दूसरे शब्दों में इन्द्रियों और आत्मा के बीच की कड़ी मन है। धम्मपद के चित्तवग्ग में चित्त

के ऊपर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। मनो पुब्बगमा धम्मा (मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है) और फन्दनं चपल चित्तं (चित्त क्षणिक है चचल है) तथा उत्तराध्ययनसूत्र के मणसमाहारणयाएणं एगग्गं जण यइ (मन की समाधारणा से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है) तथा मणो साहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई (मन ही साहसिक भयकर दुष्ट अश्व है जो चारों तरफ दौडता है) जैसे वाक्य दोनों ग्रन्थों में मन के स्वरूप को भलीभाँति स्पष्ट करते हैं। वस्तुत मन व्यक्ति के अन्तरग म एक प्रकार का साधन है जिसके द्वारा वह बाह्य ससार को ग्रहण करता है। मन कोई सामान्य इन्द्रिय नही है वरन् इसे चेतना के रूप में स्वीकार किया गया है। सामान्यतया समय का अनुपयोग या दुरुपयोग न करना अप्रमाद है। धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र में अप्रमाद का विशद विवेचन है। धम्मपद में प्रमाद को मृत्युतुल्य तथा अप्रमाद को निर्वाण कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र म प्रमाद को कर्म आस्रव और अप्रमाद को अकम सवर कहा गया ह। प्रमाद के होने से मनुष्य मर्ख और अप्रमाद के होने से पण्डित कहा जाता है। आत्मा को मलिन करनेवाली समस्त भावनायें वासनाय कषाय में गर्भित हैं। क्रोध मान माया और लोभरूपी भावनाय सबसे अधिक अनिष्ट व अशुभ हैं। उत्तराध्ययन म इन चारों को कषाय की संज्ञा दी गयी है। धम्मपद म कषाय शब्द का प्रयोग दो अर्थों में है। पहला जैन-परम्परा के समान दूषित चित्त-वृत्ति के अथ म तथा दूसरा सन्यस्त जीवन के प्रतीक गेरुए वस्त्रों के अर्थ म। धम्मपद में कषाय शब्द के अन्तगत कौन-कौन दूषित वृत्तियाँ आती हैं इनका स्पष्ट उल्लेख तो नही मिलता परन्तु इन अशभ चित्तवृत्तियो को दूर कर साधक को इनसे ऊपर उठने का सन्देश दिया गया है। उत्तराध्ययन में इन चारों का विशद वर्णन है।

प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग
उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय
वाराणसी

–महेन्द्रनाथ सिंह

आभार

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना म अनेक गुरुजनो मित्रो तथा सस्थाओ से मझे बहुविध सहायता मिली ह जिनके प्रति आभार निवेदन करना मेरा प्रथम कत्तव्य है।

ग्रन्थ-लेखन से प्रकाशन तक मझ परमपूज्य गुरुवर प्रो डॉ जगदीशनारायण तिवारी विभागाध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) तथा प्रो डा सागरमल जन निदेशक पाश्वनाथ विद्याश्रम शोध-सस्थान वाराणसी से प्ररणा सुझाव तथा प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसके लिए मं इन गवेषी मनीषी तथा प्रज्ञायुक्त यक्तित्वो का चिरऋणी रहूँगा।

आदरणीय डॉ ओमप्रताप सिह सगर प्रधानाचाय डा बशबहादुर सिह उपप्रधानाचार्य तथा डॉ हरिबश सिह विभागाध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी का मुझ पर सदैव स्नेह रहा है जिसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। उन लोगो के प्रति आभार प्रकट करना मरा कर्त्तव्य है।

आदरणीय प्रो डा हीरालाल सिह भू पू विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी डॉ शुकदेव सिह रीडर हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रो डॉ कृष्णकुमार सिनहा भ पू सकाय प्रमुख कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय डा सुदशनलाल जन रीडर सस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा भिक्ष डी रेवत सयुक्त मन्त्री महाबोधि सोसाइटी ऑफ इण्डिया धमपाल रोड सारनाथ वाराणसी ने समय-समय पर अनेक समस्याओ के निदान तथा काय म गति बनाय रखने की प्ररणा दी ह। पुस्तक के लिए शुभाशसा प्रदान कर उन लोगो ने मुझ अनुगृहीत किया है। म उन लोगो के प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में प्रोत्साहन एव परामश देनेवाले प्रो डॉ गोविन्द चन्द्र पाण्डय डॉ धमचन्द्र जन प्रो डॉ कृष्णदत्त वाजपेयी टैगोर प्रोफेसर एव भू प विभागाध्यक्ष हरिसिंह गौड विश्वविद्यालय सागर (म प्र) प्रो डा लक्ष्मी कान्त त्रिपाठी प्रो डॉ माहश्वरीप्रसाद तथा प्रो डा पुरुषोत्तम सिह प्रा भा इति स एव पुरातत्त्व विभाग का हि वि वि वाराणसी का नामोल्लेख करना आवश्यक है। लेखक इन विद्वज्जनों का सदैव आभारी रहेगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर सुझाव एवं दिशा निर्देशन देनेवाले प्रो डॉ कमलचन्द सोगानी विभागाध्यक्ष दर्शन सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान) प्रोफेसर डॉ टी जी कलघटगी विभागाध्यक्ष जैन-दर्शन मद्रास विश्वविद्यालय प्रो डॉ जयप्रकाश सिंह विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग नार्थ ईस्टर्न हिल युनिवर्सिटी शिलांग प्रो डॉ लल्लनजी गोपाल डॉ पी सी पन्त प्रा भा इति स एवं पुरातत्त्व विभाग का हि वि वि वाराणसी डॉ महेन्द्रप्रताप सिंह विभागाध्यक्ष इतिहास काशी विद्यापीठ वाराणसी का मैं विशेष आभारी हूँ।

इसी सन्दर्भ में उत्साहवर्धन करनेवाले प्रेरणा के स्रोत डॉ जयराम सिंह इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय चन्दौली वाराणसी डॉ डी एस रावत भूगोल विभाग उदयप्रताप कॉलेज वाराणसी डा झिनक यादव एवं श्री बच्चन सिंह के प्रति आभार निवेदन करता हूँ।

मैं उन सभी विद्वानो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी कृतियाँ ग्रन्थ के प्रणयन मे सहायक रही हैं। ग्रन्थ के मूल भाग या पाद टिप्पणियो में इनके यथास्थान ससम्मान उल्लेख हैं तथा सहायक ग्रन्थ सूची में तत्सम्बन्धी पूर्ण प्रविष्टियाँ हैं। परन्तु प्राक्कथन के इस धन्यवाद ज्ञापन के प्रसंग में भी मैं कुछ विद्वानो का विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ जिनकी कृतियो से मुझे ग्रन्थ की रचना में स्थान-स्थान पर सहायता मिली है यथा—डा सागरमल जैन जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ एवं २ डा सुदर्शनलाल जैन उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन डॉ गोविन्दचन्द्र पाण्डेय बौद्धधर्म के विकास का इतिहास डॉ भरतसिंह उपाध्याय बौद्ध-दर्शन और अन्य भारतीय दर्शन भाग १ एवं भाग २ पं बलदेव उपाध्याय बौद्ध दर्शन मीमांसा और भारतीय दर्शन।

पुस्तकीय सहायता के लिए केन्द्रीय ग्रन्थालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी विश्वनाथ पुस्तकालय गोयनका महाविद्यालय वाराणसी पार्श्वनाथ शोध संस्थान ग्रन्थालय वाराणसी महाबोधि ग्रन्थालय सारनाथ वाराणसी तथा प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के विभागीय ग्रन्थालय से प्राप्त सहयोग के लिए मैं इन संस्थाओ का आभारी हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन के निमित्त भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली ने अनुदान हेतु स्वीकृति प्रदान की इसके लिए मैं संस्था के प्रति विशेष आभारी हूँ।

अपने मित्र श्री धनंजय सिंह शोध-छात्र भूगोल-विभाग का हि वि वि वाराणसी से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए आभार प्रदर्शित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

पूजनीय माता पिता तथा सभी अग्रजों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ जिनके आशीर्वाद और कृपा के कारण ही यह ग्रन्थ पूण हो सका।

अन्त में विश्वविद्यालय प्रकाशन के प्रकाशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ क्योंकि इनकी तत्परता तथा लगन के कारण ही यह काय समय से पूर्ण हो सका है। इसी सन्दभ में मैं शीला प्रिण्टस के प्रबन्धक के प्रति भी आभार निवेदन करता हूँ।

१९८९ —महेन्द्रनाथ सिंह

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ
१	भमिका	१–३३
२	धम्मपद में प्रतिपादित तत्त्वमीमासा का उत्तराध्ययन में प्रतिपादित त-वमीमासा से साम्य-वैषम्य	३४–७९
३	धम्मपद के धार्मिक सिद्धान्त और उत्तराध्ययन में प्रतिपादित धार्मिक सिद्धान्तो से तुलना	८ –१३१
४	धम्मपद म प्रतिपादित बौद्ध आचार और उसकी उत्तराध्ययन म प्रतिपादित जन-आचार मीमासा से तुलना	१३२–१८६
५	धम्मपद म प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक धारणाए और उनकी उत्तराध्ययन में प्रतिपादित मनोविज्ञान से तुलना	१८७–२१७
६	धम्मपद म प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री तथा उसका उत्तराध्ययन म प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री से समानता और विभिन्नता	२१८–२४९
	ग्र थ सूची	२५ –२६

बौद्ध तथा जैनधर्म

धम्मपद और उत्तराध्ययन के
परिप्रेक्ष्य में
तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय १

भूमिका

बौद्धधर्म का सामान्य परिचय

भारतीय धर्मों के इतिहास में बौद्धधम का स्थान अद्वितीय है। इसका ज्ञान बौद्धधम की उत्पत्ति और विकास के सामान्य अध्ययन से होता है। छठी शताब्दी ई पू न केवल भारतवष अपितु विश्व के अन्य अनेक देशों के लिए धार्मिक आन्दोलन का युग था। यह न केवल धार्मिक एव आध्यात्मिक चिन्तन की दृष्टि से अपितु सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टियों से भी क्रान्तिकारी युग था। इस अवधि म विश्व के अनेक देशों में महान् समाज-सुधारकों का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् बुद्ध उनमें एक थे। इनका जन्म छठी शताब्दी ई पू के मध्य में सामान्य धारणा के अनुसार हुआ था। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ तथा गोत्र-नाम गौतम था। बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन तथा माता का नाम माया या महामाया था जो कोलियवश की राजकुमारी थी। महाप्रजापति गौतमी को बुद्ध की मौसी के रूप में स्वीकार किया गया है। गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन की अनेक विविध घटनाओं से हमारा प्रयोजन नही है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन स्रोतों में उनके प्रारम्भिक जीवन के विषय म प्रामाणिक सूचनायें अत्यल्प हैं। १९ वर्ष की अवस्था में गौतम का विवाह यशोधरा

---

१ पाण्डय गोविन्दचन्द्र स्टडीज इन दी ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म प ३१ नारायण ए के दी बैकग्राउण्ड ट दी राइज ऑफ बुद्धिज्म पृ १४ और आगे वार्डर ए के इण्डियन बुद्धि॰म प २८।

२ वही बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ १९ में गौतम बुद्ध के जन्म निर्वाण आदि की निश्चित तिथियों के सम्बन्ध में किंचित विवाद है।

३ सुत्तनिपात ३।७ ३।१।१८ १९।

४ महावग्ग विनयसुत्त ३।१।१८-२ पृ ८९।

५ दीघनिकाय हिन्दी अनुवाद सुत्त स २।१ पृ १ ९।

६ विनयपिटक चुल्लवग्ग पृ ३७४।

निर्वाण बौद्धधम का परम लक्ष्य है जहाँ समस्त कर्मक्लेशों का क्षय हो जाता है। वह स्थिति अतीन्द्रिय एवं परम सुखकारी है।[1] भगवान् बुद्ध ने अभिसम्बोधि काल में उसका साक्षात्कार किया था। धम्मपद में अनेक स्थलों पर निर्वाण का उल्लेख आया है जहाँ पर निर्वाण को सबसे बडा सुख कहा गया है। निर्वाण को प्राय नित्य सत्य ध्रुव शान्त सुख अमृतपद परमार्थ इत्यादि कहा गया है।[2] तृष्णा के क्षय को ही निर्वाण कहा जाता है। निर्वाण इसी जन्म में प्राप्त होता है। इसीको सोपाधिशेष निर्वाण कहते हैं। इसको प्राप्त करने के लिए साधक को लोभ ईर्ष्या मोह मान दृष्टि विचिकित्सा सत्यान औद्धत्य अह्री तथा अनुताप इन दस क्लेशों का नाश करना पडता है। इसकी प्राप्ति के चार सोपान हैं—स्रोतापत्ति सकृदागामि अनागामि और अर्हत्। निर्वाण की प्राप्ति संस्कारों के पूर्ण शमन से होती है। वह एक ऐसा आयतन है जहाँ पृथ्वी जल तेज वायु आकाश अकिञ्चन्य लोक परलोक चन्द्र सूय च्युति स्थिति आधार आदि नहीं है। अकलङ्क ने भी बौद्धों के निर्वाण की परिभाषा का उल्लेख किया है। उन्होंने एक स्थान पर रूप वेदना सज्ञा सस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धो के निरोध को मोक्ष कहा है।

चतुथ सत्य माग सत्य था। अपनी रूढ परिभाषा में यह अष्टांगिक मार्ग' के रूप में वर्णित है। भगवान द्वारा उपदिष्ट मध्यम मार्ग यही आय अष्टांगिक मार्ग है। इसम आठ अग हैं यथा—सम्यक दृष्टि सम्यक सकल्प सम्यक वाक सम्यक कम सम्यक आजीव सम्यक व्यायाम (चेष्टा या प्रयत्न) सम्यक स्मृति एवं सम्यक समाधि। इसमें सम्यक दृष्टि प्रथम ही नहीं अपितु प्रमुख भी है। इसे प्रज्ञा भी कहते हैं। सम्यक का तात्पय सन्तुलित से है। सन्तुलित दृष्टि ही सम्यक दृष्टि है। सन्तुलित से तात्पर्य है दोनो अन्तो की ओर न जाकर बीच में रहना अर्थात् आचार की दृष्टि से और दार्शनिक दृष्टि से भी पूर्ण सन्तुलित रहना। इसी आर्य अष्टांगिक माग में

---

१ मज्झिमनिकाय २।३।५।
२ धम्मपद गाथा स २ ३ २ ४।
३ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास प ९३।
४ सुत्तनिपात पारायणवग्ग।
५ दीघनिकाय तृतीय भाग पृ १८२।
६ उदान पाटलियवग्ग।
७ न्यायाचाय महेन्द्रकुमार तत्त्वाथ वार्तिक (अकलंक) १।१।८ तथा डॉ राधाकृष्णन इण्डियन फिलासफी जिल्द १ पृ ४१८।
८ धम्मपद गाथा स २७३।

शील समाधि और प्रज्ञा जो बौद्धधर्म के तीन स्तम्भ हैं अन्तर्भत हो जाते हैं। प्रारम्भ के दो अग प्रज्ञा उसके बाद के तीन अग शील तथा अन्तिम तीन समाधि हैं। दीघनिकाय के सूत्रों में शीलों की लम्बी सूचियाँ प्राप्त होती हैं। विशिष्ट प्रयोजन से शीलों की छोटी-बडी सूचियाँ भी बनायी गयी थी जैसे उपासको के पाँच या आठ शील संघ में नये प्रविष्ट हुए व्यक्ति के दस शील या दस शिक्षापद इत्यादि। शील प्राय वे ही हैं जो अष्टागिक माग में सम्यक वाक से लेकर सम्यक आजीव तक उल्लिखित हैं। प्रज्ञा से प्रभावित शील ही वास्तविक शील है। शील से समाधि और समाधि से प्रज्ञा का उत्पाद होता ह। इस तरह एक चक्र बन जाता है जो जीवन को परिशुद्ध सार्थक एव पूण बनाता है।

सक्षप म बद्ध के माग म बाह्य आचरण की शुद्धि और मानसिक अभ्यास दोनों पर बल था। आचरण-शुद्धि को अत्यन्त आवश्यक माना गया है परन्तु मानसिक अभ्यास या ध्यान को किंचित ऊँची कोटि म रखा गया है क्योकि इसीसे ज्ञान की प्राप्ति सम्भव होती है। इसी प्रकार बार-बार आमनिभरता और सत्य के स्वय साक्षात्कार पर बल दिया गया है।

जैनधर्म का सामान्य परिचय

जैनधम की उत्पत्ति एव विकास का इतिहास इस धम के प्रचारको के इतिहास के साथ सम्बद्ध है। इस धर्म के प्रचारको को तीथकर कहा गया ह। यहाँ तीथकर का सामान्य अथ ससार-सागर को पार करनवाले माग की शिक्षा देनवाला है। इसी प्रकार जैन श द की उत्पत्ति जिन अर्थात जेता या विजय करनवाले से हुई है अर्थात् वह व्यक्ति जिसने अपनी इद्रियो पर विजय प्राप्त कर ली हो। जन धर्म के प्रचारको ने स्वय सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन एव सम्यक चरित्र द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए तपस्या का आचरण कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। इसी कारण उन्हें जिन और सवज्ञ कहा गया। उन्होंने प्रथम इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की तत्पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त किया और जिन द्वारा प्रशिक्षित धम को जनधम कहा गया है।

---

१ पाण्डय गोविन्दचन्द्र स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बद्धिज्म पृ ५१४ दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्त तथा थामस इ जे हिस्ट्री ऑफ बद्धिस्ट थाट पृ ४४।

२ दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त।

३ सुत्तनिपात धम्मिकसुत्त।

४ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ १४२।

५ शास्त्री कैलाशच— जैनधर्म पृ ६५।

जैन-अनुश्रुति के अनुसार इस भरत-क्षेत्र में अब कर्मयुग है उसके पूर्व भोगयुग था। भोगयुग की अवस्था में मानव स्वर्णिम आनन्द प्राप्त करता था। मनुष्य की सारी आवश्यकताएं कल्पवृक्ष से पूरी हुआ करती थीं। परन्तु यह नैसर्गिक सुख अधिक दिनों तक न रह सका जनसंख्या बढ़ी तथा मनुष्य की आवश्यकताएं नित्य नया रूप धारण करने लगीं। फलतः भोगयुग कर्मयुग में बदल गया। इसी समय चौदह कुलकर या मनु उत्पन्न हुए। ये कुलकर इसलिए कहलाते थे कि इन्होंने कुल की प्रथा चलायी तथा कुल के उपयोगी आचार रीति रिवाज सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया। चौदह कुलकरों में श्री नाभिराय अन्तिम कुलकर हुए। इनके पुत्र ऋषभदेव थे जो जैनधर्म के आदि प्रवर्तक हुए। इन्हींसे जैनधर्म की परम्परा का प्रारम्भ है। भगवान् ऋषभदेव को जैन-ग्रन्थों के अनुसार जिन या तीर्थकर माना जाता है। सम्पूर्ण जैनधर्म तथा दर्शन ऐसे ही चौबीस तीर्थकरों की वाणी या उपदेश का संकलन है। इन चौबीस तीर्थकरों में भगवान ऋषभदेव आद्य तथा भगवान महावीर अन्तिम तीर्थकर माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी २२ तीर्थकर हुए—अजितनाथ सम्भवनाथ अभिनन्दननाथ सुमतिनाथ पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ चन्द्रप्रभ सुविधिनाथ शीतलनाथ श्रेयांसनाथ वासुपूज्य विमलनाथ अनन्तनाथ धर्मनाथ शान्तिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ मल्लिनाथ मुनि सुव्रत नमिनाथ अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ। अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर का जन्म ५९९ ई पू के आसपास विदेह की राजधानी वैशाली के कुण्डनपुर ग्राम में हुआ था जो आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले का वसुकुण्ड है। उनके पिता सिद्धार्थ एक क्षत्रिय-कुल के प्रमुख थे और माता त्रिशला विदेह के राजा की बहन थी। जैनागम एवं पुराण ग्रन्थों के उल्लेखों से पता चलता है कि वर्धमान का प्रारम्भिक जीवन वैभव से परिपूर्ण था। उन्हें राजकुमारोचित सभी विद्याओं की शिक्षा दी गयी। शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् दिगम्बर-परम्परानुसार वे तीस वर्ष की अवस्था तक अविवाहित ही रहे और तत्पश्चात् प्रव्रज्या ग्रहण की। लेकिन इसके विपरीत श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् युवा होने पर वर्धमान का विवाह यशोदा नामक एक राजकुमारी से हुआ जिससे एक पुत्री भी उत्पन्न हुई थी। उस पुत्री का विवाह जामालि नामक एक क्षत्रिय युवक से हुआ था जो कालान्तर में महावीर का शिष्य भी बन गया था। बुद्ध के विपरीत महावीर अपने

---

१ जैन हीरालाल भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृ १ ।

२ जैन जगदीशचन्द्र जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज पृ १ ।

३ हरिवंशपुराण ६६।८ ।

४ भारतीय संस्कृति मे जैनधर्म का योगदान पृ २४ ।

माता-पिता की मृत्यु तक उन्हींके घर में रहे और बाद में जब वह तीस वर्ष के हो गये तब उन्होंने आध्यात्मिक जीवन म प्रवेश किया।

भिक्षु बन जाने के पश्चात ज्ञानपिपासु वर्धमान तपस्या मे लीन हो गये। विभिन्न विघ्न-बाधाओं को सहन करते हुए भगवान महावीर लगभग बारह वष तक कठिन तपस्या करते रहे। तरहव वष वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जम्भिक ग्राम के बाहर ऋजुकला नदी के उत्तर तट पर एक शालवृक्ष के नीचे उन्हें पूण ज्ञान प्राप्त हो गया अर्थात जैसा कि कहा जाता है वह केवली हो गये। इस साधना के फल स्वरूप वह तीथकर बने और अपने जीवन का शेषाश उन्होंने धम के प्रचार और अपने मुनिसघ को सगठित करन में बिताया। जैनधम के दोनो सम्प्रदायो (श्वेताम्बर एव दिगम्बर) की परम्परा से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर का निर्वाण ५२७ ई पू के आसपास लगभग ७२ वष की आयु म पावापुरी म हुआ था जो पटना जिले में बिहारशरीफ के समीप लगभग सात मील की दूरी पर स्थित है।

बौद्धधर्म के विपरीत जैनधर्म का प्रभाव भारत के अन्दर ही सीमित रहा और भारत के अन्दर भी इसका प्रभाव अपने ज म के प्रदेश के अ दर अपेक्षाकृत कम तथा उसके बाहर विशषत पश्चिम और दक्षिण म अधिक रहा। महा मा बद्ध की भाँति भगवान् महावीर को भी अपने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए अनक राजवशो का सहयोग मिला। लिच्छवि-नरेश चेटक स्वय महावीर का शि य था। ज्ञाताधमकथा तथा अनुत्तरोपपासिक दशाग आदि आगम ग्रन्थो से भी ज्ञात होता ह कि बिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु चम्पानरेश दधिवाहन तथा उसकी पत्री च दना आदि सभी महावोर के माग के अनुयायी बने। महावीर ने अपने अनुयायियो को चार भागों म विभाजित किया था—मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका। मुनि और आर्यिका घर-गृहस्थी का त्यागकर सबसे दूर रहनवाले श्रमण एव श्रमणी के रूप में विभाजित थ तथा अन्तिम दो वग श्रावक और श्राविका के नाम से जाने जाते थे जो घर-गृहस्थी में रहकर जैनधम का आचरण करते थे। यही उनका चतुर्विध जैन सघ था।

---

१ हिरियन्ना एम भारतीय दशन की रूपरेखा प १५७।

२ पाण्डेय रामजी प्राचीन भारतीय कालगणना एव पारम्परिक सवत्सर प २१ २२।

३ ज्ञाताधमकथा अध्याय १ ।

४ अनुत्तरोपपातिकदशा तृतीय वर्ग सूक्त ४।

जैनधर्म के सिद्धान्त

जनधम का सिद्धान्त भी बौद्धधर्म की तरह एक प्राकृत भाषा अधमागधी में लिखित है और परम्परा के अनुसार इसका सम्पादन पाँचवीं शताब्दी ईसवी के अन्त या छठी शताब्दी के आरम्भ के आसपास वलभी में देवर्धि की अध्यक्षता में हुआ। इस अपेक्षाकृत बाद की तिथि को देखते हुए कुछ लोग इस जैन-सिद्धान्त के मूल उपदेश के अनुसार होने में सन्देह करते हैं। लेकिन सच्चाई यह प्रतीत होती है कि देवर्धि ने उन ग्रन्थों को व्यवस्थित मात्र किया जो पहले से अस्तित्व में थे और तीसरी शताब्दी ई प से चले आ रहे थे। इस तिथि से पहले भी कुछ जैन-ग्रन्थ थे जिन्हें पर्व कहा जाता है लेकिन बाद में वे लुप्त हो गये तथा इनका स्थान नये ग्रन्थ अगों ने ले लिया। इस प्रकार जैन-सिद्धान्त के वर्तमान रूप की प्रामाणिकता में सन्देह करने का कोई कारण नही है हालाँकि इसका यह मतलब नहीं है कि इसमें यदा-कदा कोई परिवर्तन-परिवधन नही हुए।

जैनधम ईश्वर की सृष्टि म विश्वास नही करता। इस धम के अनुसार मनुष्य स्वय अपने भाग्य का विधाता होता है। सासारिक एव आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य अपने प्रत्येक कम के लिए उत्तरदायी है। उसके सारे सुख-दु ख कम के ही कारण हैं। ससार में जीव जिन कर्मों से बधकर घूमता रहता है उत्तराध्ययनसूत्र म उनकी सख्या आठ बतलायी गयी है। इस ससार में जितने भी जीव हैं सभी अपने अपन कर्मों के द्वारा ससार भ्रमण करते हुए विभिन्न योनियों में जाते हैं। किए हुए कर्मों का फल भोगे बिना जीव को मुक्ति नही मिलती। अत मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने पूवजन्म के कम-फल का नाश करे और इस जन्म म किसी प्रकार के कमभाव से गृहीत न हो।

स्याद्वाद जैनधर्म-दशन का प्रधान सिद्धान्त है। स्यात् शब्द अस धातु के विधिलिङ के रूप का तिङन्त पद जैसा प्रतीत होता है। लेकिन यह शब्द अव्यय है जो कथंचित् अथवा अमुक दृष्टि का प्रतीक है। इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ सापेक्षवाद अपेक्षावाद और कथचित्वाद ह जो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से वस्तु के तत्त्व का निरीक्षण करता है। जैन-दशन में स्याद्वाद को अनेकान्तवाद भी कहते हैं क्योंकि स्याद्वाद से

१ समवायागसुत्त सूत्र ६ ।
२ स्टीवेन्सन एस हर्ट ऑफ जैनिज्म पृ १६।
३ उत्तराध्ययनसूत्र ३३।२ ३।
४ जैनी जे आउट लाइन्स ऑफ जैनिज्म पृ १३९ १४ ।
५ मेहता मोहनलाल जैनधर्म-दशन पृ ३५८।

जिस पदाथ का कथन होता है वह अनेकान्तात्मक है। अनेका तात्मक अर्थ का कथन ही अनेकान्तवाद है। अत अव्यय स्यात अनेका त का द्योतक है। इसलिए स्याद्वाद को अनेकान्तवाद कहा गया है। देवे द्र मनि शास्त्री आदि जैन विद्वानो के अनुसार वास्तविक सत्य की खोज करन म अनकान्तवाद सहायक होता है। अनेकान्त दष्टि से प्रत्येक वस्तु नित्य एव अनित्य दोनों है। तत्त्वाथसूत्र के अनुसार प्रत्येक सत् पदाथ उत्पाद व्यय एव ध्रौव्यात्मक है। स्याद्वाद के अनुसार सत कभी नाश और असत की कभी उत्पत्ति नही होती। सूत्रकृताग के अनुसार वस्तुतत्त्व को जीव एव शरीर के रूप म माना गया ह। प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक ह। उन अनन्त धर्मों की यथाक्रम सगति बैठाने के लिए विधि एव निषध आदि की भावना से सात प्रकार की भावनाओं का विचार किया गया है। इसे ही सप्तभगीनय कहत हैं। ये सात प्रकार के हैं—

स्यात अस्ति स्यात नास्ति स्यात अस्ति नास्ति स्यात अवक्तव्य स्यात अस्ति अवक्तव्य स्यात् नास्ति-अवक्तव्य स्यात् अस्ति-नास्ति च अवक्तव्य। यहाँ जैनो के अनुसार इन सात प्रकार की अवस्थाओ म द्रव्य क्षत्र काल तथा भाव आदि चार स्वरूपो को लेकर विभिन्न अवस्थाओ की सम्भावना की गयी है जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व की सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जनो न विश्व के प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक स्वरूपो का विचार कर सात प्रकार के मल तत्त्वो का पता लगाया। ये तत्त्व जीव अजीव आस्रव ब ध सवर निजरा और मोक्ष हैं पुण्य पाप को भी इनम जोडकर उत्तराध्ययनसूत्र म इनकी सख्या ९ बतलायी गयी है। भगवान महावीर ने तत्त्व-ज्ञान की शिक्षा म बताया है कि जीव और अजीव अर्थात चेतन और जड ये दो मल तत्त्व है जो परस्पर सम्बद्ध हैं। चेतन की मन वचन काया से सम्ब धित क्रियाओ द्वारा इस जड एव चेतन

---

१ म लिषण स्याद्वाद मजरी पृ ६।
२ शास्त्री देवेन्द्रमनि धर्म और दशन प १ ४।
३ तत्त्वाथसूत्र ५।
४ भारतीय दशन की रूपरेखा पृ १६४–१६६।
५ सूत्रकृताग १।१।१७।
६ स्याद्वाद मजरी २३।
७ मिश्र उमेश भारतीय दशन प १३१।
८ तत्त्वाथसूत्र १।४।
९ उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४।

सम्बन्ध की परम्परा प्रचलित है। इसे ही कर्मबन्ध कहा गया है। नियम एवं व्रताचरण के पालन द्वारा इस कर्मबन्ध की परम्परा को तथा संयम एवं तप द्वारा पुराने कर्मबन्ध को रोका जा सकता है और जड तत्त्व से सर्वथा मुक्त जीव अपने अनन्त ज्ञान एवं दर्शनात्मक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार की क्रिया द्वारा जन्म मरण की परम्परा का विच्छेद करके मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। जैनधर्म में मानव-जीवन का यही परमलक्ष्य बताया गया है।

भगवान् महावीर ने अपने धर्म का मूलाधार अहिंसा माना है और अहिंसा के ही विस्तार में उन्होंने पंचमहाव्रतों को स्थापित किया। ये पाँच व्रत हैं—अहिंसा अमृषा (सत्य) अचौर्य अमैथुन (ब्रह्मचर्य) एवं अपरिग्रह। इन पाँच व्रतों को मुनियों द्वारा पूर्णत पालन किये जाने पर महाव्रत और गृहस्थों द्वारा स्थूल रूप से पालन किये जाने पर महाव्रत और गृहस्थो द्वारा स्थूल रूप से पालन किये जाने पर अणुव्रत नाम दिया गया। जैन-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ ने चातुर्यामधर्म और महावीर ने पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया। पार्श्वनाथ आदि मध्य के २२ तीर्थंकर भिक्षुओं के लिए चार ही व्रतों को आवश्यक मानते थे परन्तु महावीर ने पाँचवें ब्रह्मचर्यव्रत को भी आवश्यक बतलाया। दूसरा मतभेद भिक्षुओं के लिए वस्त्र धारण करने पर था। भगवान महावीर ने अचेलत्व पर बल दिया।

भगवान महावीर समता के पक्षपाती थे। अत उन्होंने जाति एवं वर्ण में विश्वास नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों के यज्ञ-यागादि का विरोध करते हुए कहा है कि हे ब्राह्मणो! अग्नि का प्रारम्भ कर और जल मंजन कर बाह्यशुद्धि के द्वारा अन्त शुद्धि क्यों करते हो? जो मार्ग केवल बाह्यशुद्धि का है उसे कुशल पुरुषों ने इष्ट नहीं बतलाया है। कुशा यूप तृण काष्ठ और अग्नि तथा प्रातः और सायंकाल जल का स्पर्श कर प्राणी और भूतों का विनाश कर हे मन्दबुद्धि पुरुष तुम केवल पाप का ही उपार्जन करते हो। इस प्रकार बाह्यशुद्धि एवं कर्मकाण्ड को निरर्थक बतलाकर उन्होंने शुद्ध आचरण की प्रतिष्ठा पर बल दिया। उत्तराध्ययन में कहा गया है कि धर्म मेरा जलाशय है ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ है आत्मा की प्रसन्नलेश्या मेरा निर्मल घाट है जहाँ स्नान कर आत्मा विशुद्ध होता है। अत जो

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २१।१२।
२ वही २३।२३।
३ वही २३।१३।
४ वही १२।३८ ३९।
५ वही १२।४६।

चरित्राचार के गुणों से संयुक्त है जो सर्वोत्तम संयम का पालन करता है जिसने समस्त आस्रवो को रोक दिया है जिसने कर्मों का नाश कर दिया है वह विपुल उत्तम और ध्रुवगति मोक्ष को पाता है।[1] ब्राह्मणों की जन्मजात वर्णव्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उन्होंने कर्म के आधार पर उसकी व्याख्या की। उनका स्पष्ट विचार था कि कर्म से ही कोई ब्राह्मण होता है कर्म से ही क्षत्रिय होता है कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही मनुष्य शूद्र भी होता है।[2] निर्वाण-प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपनी निम्न प्रवृत्तियों का दमन करे। उन्होने सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र एव सम्यक दर्शन को ही मोक्ष का कारण माना है।[3]

बौद्ध एव जैन-ग्रन्थो म उल्लिखित साक्ष्यो से पता चलता है कि लगभग ६ ई पू में पार्श्वनाथ द्वारा जिस धर्म का प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया गया था उसे महावीर स्वामी ने पूरे बिहार प्रदेश में प्रचार-कार्य द्वारा एक लोकप्रिय धर्म बना दिया। धीरे धीरे समस्त उत्तर भारत एव बगाल में भी इसकी लोकप्रियता बढ गयी और महावीर के पश्चात् तो समस्त देश में यह धर्म अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

जैनधर्म और बौद्धधर्म मे समानता और विभिन्नता

भारतीय सस्कृति अनेक प्रकार के विचारो का विकसित रूप है। ये विचार अनादिकाल से अनेक धाराओ में बहते चले आ रहे हैं। इन्हें मुख्य रूप से दो भागो में विभक्त किया जा सकता है—एक वैदिक-परम्परा तथा दूसरी श्रमण-परम्परा। श्रमण-परम्परा की अनेक शाखाए रही है किन्तु वर्तमान में केवल दो शाखाए ही दृष्टि गोचर होती हैं जैन परम्परा तथा बौद्ध-परम्परा। ये दोनो ही परम्पराएँ अन्य परम्पराओ की भाँति धर्म एव दर्शन के रूप में विकसित हुई हैं।

इस प्रकार बौद्ध-दर्शन एव जैन-दर्शन दोनो श्रमण-परम्पराओ की दो पृथक-पृथक् विचारधाराए हैं। स्वाभाविक रूप से इनमे कुछ दृष्टियों से साम्य और कुछ दृष्टियो से वैषम्य है। साम्य इस रूप में है कि ये दोनों दर्शन न तो वेद को प्रमाण मानते हैं और न ही ईश्वर को जगत का कर्ता। ये कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। ससार म सत्त्व (जीव) अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही एक गति से दूसरी गति म जन्म एव मरण को प्राप्त करता हुआ नाना दु खों को भोगता रहता है। ससार म जो भी विचित्रता है वह प्राणियो के कर्मों के फलस्वरूप ही है। सत्त्व इन कर्मों से मुक्त हो जाता है तो

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २ ।५२।

२ वही २५।३३।

३ तत्त्वार्थसूत्र १।१।

उसका जन्म और मरण के द्वारा संसार में भटकना समाप्त हो जाता है। थोड़े-से भेद के साथ इस कर्म-सिद्धान्त को दोनों ही परम्पराएँ स्वीकार करती हैं।

किन्तु इन समानताओं के होते हुए भी दोनों धर्मों में जो मौलिक अन्तर है जिनके कारण ये दोनों धर्म भिन्न हैं। इनमें सबसे प्रमुख बात पदार्थविषयक मान्यता है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार पदार्थ उत्पाद एवं व्यय से युक्त है जब कि जैन-दर्शन में पदार्थ उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य से युक्त है। फलतः वह नित्यानित्यात्मक सामान्य विशेषात्मक एवं भेदाभेदात्मक है। बौद्ध-दर्शन में आत्मा को नित्य एवं स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में न मानकर पंचस्कन्धात्मक माना गया है जब कि जैन-दर्शन में आत्मा को परिणामी नित्य स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। जैनधर्म आत्मवादी और बौद्धधर्म अनात्मवादी है।

बौद्ध और जैनधर्म का साम्य और वैषम्य स्पष्ट है। अतः यह एक विचारणीय विषय है कि इन दो विचारधाराओं में उक्त साम्य एवं वैषम्य किस सीमा तक है और उसका आधार क्या है? उक्त प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए धम्मपद एवं उत्तराध्ययनसूत्र का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि जहाँ एक ओर धम्मपद में जो खुद्दकनिकाय का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है बौद्धधर्म के समस्त तत्त्व संक्षेप में वर्णित हैं तो दूसरी ओर उत्तराध्ययन में जैन-दर्शन के सभी मूल सिद्धान्तों का कथन है। बुद्ध ने धम्मपद में बौद्धधर्म के तत्त्वों का वर्णन कर तथा महावीर ने उत्तराध्ययन में सभी जैन सिद्धान्तों का वर्णन कर गागर में सागर भरने की कहावत चरितार्थ की है। अतः इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन जो कि आज तक नहीं हुआ है बौद्ध एवं जैन दर्शन के सम्बन्धों को अधिक अच्छी तरह से समझने में सहायक हो सकता है।

बौद्ध-साहित्य में धम्मपद का स्थान

धम्मपद पालि बौद्ध-साहित्य का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। ब्राह्मण या श्रौतस्मार्त-परम्परा में जो महत्त्व श्रीमद्भगवद्गीता को प्राप्त है वही स्थान बौद्ध परम्परा में धम्मपद को है। दोनों में मौलिक अन्तर भी है। गीता का एक ही कथानक है और श्रोता भी एक ही है लेकिन धम्मपद के विभिन्न कथानक और विभिन्न श्रोता हैं। गीता का उपदेश एक निश्चित समय में समाप्त किया गया था लेकिन धम्मपद में तथागत के पैंतालीस वर्षों के उपदेश संगृहीत हैं। भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाणपर्यन्त समय-समय पर जो उपदेश दिये उनका महत्त्वपूर्ण अंश धम्मपद में संकलित है। बौद्धधर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त इसमें संक्षेप में समाहित हैं।

धम्मपद शीर्षक की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से की गयी है। यह एक अनेकार्थक शब्द है जिसे स्वतः बौद्धों ने भी स्वीकार किया है।

बाईसवें 'निरयवग्ग' में नरक में उत्पन्न होनेवालों का वर्णन है। कहा गया है कि असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो करके नहीं किया कहता है। इस प्रकार दोनों की गति मरने पर एक समान है। इस वग में १४ गाथायें हैं।

तेईसवें नागवग्ग में हाथी के समान अडिग रहने का उपदेश है। भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार नाग (हाथी) युद्धभूमि में धनुष से गिरे बाण को सहन करता है वैसे ही मैं कटुवाक्यों को सहन करूँगा क्योंकि संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं। इस वर्ग में १४ गाथाय हैं।

चौबीसवें तण्हावग्ग में तृष्णा का वर्णन है। तृष्णा के ही कारण मनुष्य दुःखों में पड़ा है। यह सभी पापों की जननी है। लेकिन जो इससे रहित है उसे शोक नहीं होता। इस वग में २७ गाथाय हैं।

पचीसवें भिक्खुवग्ग में सच्चे भिक्षु का स्वरूप बताया गया है तथा यह बताया गया है कि एक सच्चे भिक्षु को क्या करना चाहिए यथा भिक्षु इन्द्रियों मे संयम करे सन्तोषी हो और प्रातिमोक्ष की रक्षा करे शुद्ध जीविकावाला हो निरालस रहे तथा मित्रों का साथ करे। इस वर्ग में २३ गाथायें हैं।

छब्बीसवें तथा अन्तिम ब्राह्मणवग्ग में ब्राह्मणों के लक्षण बतलाये गये हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण की परिभाषा की गयी है। ब्राह्मण का अर्थ है सभी पापों से रहित व्यक्ति ज्ञानी और अर्हत। इस वर्ग में ४१ गाथायें हैं।

ऊपर धम्मपद की विषयवस्तु के स्वरूप का जो परिचय दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि उसमें नीति-सम्बन्धी सभी आदर्श निहित हैं जो भारतीय संस्कृति और समाज की सामान्य सम्पत्ति हैं। इसकी गाथाओं में शील समाधि प्रज्ञा निर्वाण आदि का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन है जिसको पढ़ते हुए एक अद्भुत संवेग धर्मरस शान्ति ज्ञान और संसार निर्वेद का अनुभव होता है। इस सम्बन्ध में भरतसिंह उपाध्याय के शब्दों में धम्मपद को इस प्रकार बौद्धों की गीता ही कहना चाहिए। सिंहल में बिना धम्मपद का पारायण किये किसी भिक्षु की उपसम्पदा नहीं होती। बर्मा स्याम कम्बोडिया और लाओस में भी धम्मपद का कण्ठस्थ होना प्राय प्रत्येक भिक्षु के लिए आवश्यक माना जाता है। बुद्ध-उपदेशों का धम्मपद से अच्छा

१ धम्मपद गाथा-स ३ ६।

२ वही ३२ ।

३ वही ३२ ।

४ लाहा विमलाचरण हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर जिल्द १ पृ २० –२१४।

संग्रह पालि-साहित्य में नही है। इसकी नैतिक दृष्टि जितनी गम्भीर है उतनी ही वह प्रसादगुणपूर्ण भी है।

श्री अ बट ज एडम ड ने धम्मपद के अपन अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा है— यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई तो वह यह है। इन पदो ने अनेक विचारको के हृदय में चिन्तन की आग जलायी है। इन्हीसे अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मगोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की अलघ्य चोटियाँ लाघकर भगवान् बुद्ध के चरणो से पूत भारत भमि के दर्शनाथ आए। बुद्ध के धमपदो की प्ररणा से ही महाराज अशोक ने अपने राज्य म प्राणदण्ड का निषध किया था और मनुष्यो तथा जानवरो तक के लिए अस्पताल खोले थे।

पूज्य भदन्त आनन्द कौसल्यायन का कथन बिल्कुल ठीक है कि यदि केवल एक पुस्तक को जीवनभर साथी बनाने की कभी इच्छा हो तो विश्व के पुस्तकालय म धम्मपद से बढकर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।

धम्मपद मलत बुद्ध वचन ह अत इसका रचना काल अज्ञात है। लेकिन बाद के साक्ष्यो के आधार पर यह पता चलता है कि ह्वनसाग जिसन सातवी शताब्दी में भारत का भ्रमण किया उसका विचार है कि त्रिपिटक काश्यप के द्वारा प्रथम सगीति के अन्त म ताम्रपत्रो पर लिखा गया था जो बाद म राजा बट्टगामिनि के शासन काल म (८८ से ७६ ई पूव) उसे पुस्तको म इसलिए लिपिबद्ध कर दिया गया कि बौद्धधर्म युगों तक जीवित रह सके। अत स्प ट है कि धम्मपद का वतमान रूप इसी समय निश्चित हुआ था।

इस ग्रन्थ की निर्माण तिथि के सम्बन्ध मे प्रधानतया दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। प्रथम मत प्रोफसर मक्सम्यलर का ह जिनके अनुसार प्रारम्भ में सभी बौद्ध ग्रन्थ मौखिक परम्परा के रूप में थे जो बाद म सिंहलद्वीप के राजा बट्टगामिनि के आदेश से लिखित रूप में आय। महावश नामक बौद्ध साहित्य की रचना में इस तथ्य का उ लेख मिलता है। महावश का निर्माण-काल ४५९–४७७ ई प्रसिद्ध है। दूसरा मत

---

१ उपाध्याय भरतसिंह पालि-साहित्य का इतिहास पृ २३८।
२ कौसल्यायन भदन्त आनन्द धम्मपद की भूमिका पृ १।
३ मक्सम्यूलर एफ सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट भूमिका पृ १२।
४ वही इण्डियन एण्टीक्यरी नवम्बर १८८ पृ २७।
५ दीपवश अध्याय २ पंक्ति २।
६ सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट जिल्द १ भूमिका।

है कि सभी त्रिपिटक का संकलन भगवान् बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् ४७७ ई प राजगृह मे आयोजित प्रथम महासगीति-सम्मेलन में किया गया था। द्वितीय और तृतीय महासम्मेलनों म तो इन सकलनों को पर्णता प्राप्त हो गयी थी। अत कहा जा सकता है कि धम्मपद और बौद्ध-साहित्य का सकलन ई पू ४७७ तक हो चुका था। इसके लिए कुछ बाह्य प्रमाण दिये जा रहे हैं। मिलिन्दपन्हो एक प्राचीन एव सुविख्यात पालि-ग्रन्थ है। इसकी रचना प्रथम शताब्दी के आरम्भ में हुई है। धम्मपद के बहुत सारे उद्धरणो का उल्लेख इसके अन्तगत आया है। कथावत्थ धम्मपद की बहुत सारी उक्तियो को उद्धत करता है। महानिद्देस और चुल्लनिद्देस भी ई पू द्वितीय शताब्दी के पश्चाद्वर्ती नही हो सकता क्योंकि सम्राट अशोक ने धम्मपद के अप्पमादवग्ग को विद्वान श्रमणो से सुना था जो इस बात का प्रमाण है कि धम्मपद अशोक से पववर्ती रचना है। अशोक का काल ई प तीसरी शती माना जाता है। अत यह कहा जा सकता है कि धम्मपद का रचना-काल ई प तीसरी शताब्दी से पर्ववर्ती है।

धम्मपद के अनेक सस्करण और अनुवाद प्राप्त हैं। विशेष उल्लेखनीय अग्रेजी अनुवाद मक्सम्यलर (एस बी ई) राधाकृष्णन् नारदथेर एफ एल वुडवड ए एल एडमण्ड इरविंग बैबिट और यू धम्मज्योति के तथा हिन्दी अनुवाद महापण्डित राहुल साकत्यायन और भदन्त आनन्द कौसल्यायन के हैं। भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित धम्मपद का देवनागरी सस्करण भी खुद्दकनिकाय-पालि की प्रथम जिल्द म विद्यमान है। विभिन्न विद्वानो ने अपने सस्करणो में धम्मपद और इसमें प्राप्त उपदेशो के विषय मे न्यनाधिक विस्तृत विद्वत्तापर्ण भूमिकायें भी लिखी हैं। धम्मपद को समझने म अटठकथा भी अत्यन्त सहायक है जिसका बर्लिगेम ने अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है और जिससे यह सूचना प्राप्त होती है कि बौद्ध-परम्परा के अनुसार किन अवसरों पर बुद्ध ने विभिन्न गाथाय कही थीं। धम्मपदट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की रचना है या नहीं इसके विषय म सन्देह प्रकट किया गया है। जर्मन विद्वान् डॉ विल्हेल्म गायगर ने इसे आचाय बुद्धघोष की रचना नहीं माना है। उन्होने धम्मपदटठकथा को जातकटठवण्णना से भी बाद की रचना माना है क्योंकि

१ ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म अध्याय १।

२ भिक्षु धमरक्षित धम्मपद की भूमिका पृ ४।

३ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भूमिका।

४ गायगर विल्हेल्म पालि लिट्रेचर एण्ड लैंग्वेज पृ० १२।

दोनो में अनेक कहानियाँ समान हैं। आश्चय की बात है कि जो कहानियाँ यहाँ दी गयी हैं और जिनके आधार पर धम्मपद की प्रत्यक गाथा को समझाया गया है उन्हें भी साक्षात बुद्धोपदेश ही यहाँ बतलाया गया ह जो ऐतिहासिक रूप से ठीक नही हो सकता। फिर भी धम्मपदटठकथा की कहानियो म जातक के समान ही प्राचीन भारतीय जीवन विशेषत सामा य जनता के जीवन की पूरी झलक मिलती है और भारतीय कथा-साहित्य म उसका भी एक स्थान ह।

जैन-साहित्य मे उत्तराध्ययनसत्र

उत्तराध्ययन शब्द दो शब्दो के योग से बना है—उत्तर + अध्ययन अर्थात् प्रधान और पश्चाद्‌भावी अध्ययन। ता पय यह ह कि भगवान महावीर ने अपने जीवन के उत्तरकाल म निर्वाण के पूव जो उपदेश दिया था उन्ही उपदेशो का सकलन इस ग्रन्थ म हुआ ह। यह सूत्र अधमागधी प्राकृत भाषा म निबद्ध एक जन आगम ग्रन्थ है। यह एक धार्मिक काव्य ग्रन्थ ह। इसम नवदीक्षित साधुओ के सामान्य आचार विचार आदि का वणन किया गया है। कुछ स्थानो पर सामान्य मूलभत सिद्धान्तों की चर्चा की गयी ह। इसका स्थान मूल सूत्रो म प्रथम और महत्त्वपण है। अत मूलसूत्रो की सख्या और नामो म पर्याप्त अन्तर पाया जाता है फिर भी उत्तराध्ययन के मूलसूत्र होन म किसीको स देह नही हैं तथा क्रम म अन्तर होने पर भी प्राय सभी उत्तराध्ययन को प्रथम मूलसूत्र मानत हैं। जाल शार्पेन्टियर ने महावीर के शब्द होने से इन्ह मूलसूत्र कहा है। परन्तु यह कथन ठीक नही ह क्योकि सभी ग्रन्थो का सम्ब ध महावीर के वचनो से ह। प्रो गरीनो न इन पर कई टीकाओं के लिखे जाने से मल ग्र थ कहा ह। परन्तु यह युक्तिसगत नही है क्योकि प्राय सभी ग्रन्थों पर टीकाय लिखी गयी हैं। डा शब्रिंग न साध-जीवन के मूलभत नियमों के प्रतिपादक होन के कारण मूलसूत्र कहा ह। प्रो एच आर कापडिया नमीचन्द्रजी शास्त्री आदि विद्वान् कुछ सशोधन के साथ इस सिद्धा त के पक्ष में हैं।

---

१ डा जगदीशचन्द्र जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास भाग २ पृ १४४।

२ शापन्टियर उ भमिका पृ ३२ तथा कापडिया एच आर हिस्ट्री ऑफ दी केनोनिकल लिटरेचर ऑफ जैन्स पृ ४२।

३ वही प ४२।

४ आत्माराम दशवैकालिकसूत्र भमिका प ३ तथा हिस्ट्री ऑफ दी केनोनिकल लिटरचर ऑफ जैन्स पृ ४२।

५ शास्त्री नेमीचन्द्र प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ १९२ हिस्ट्री ऑफ दी केनोनिकल लिट्रेचर ऑफ जैन्स पृ ४३।

विभिन्न विषयो का प्रतिपादन करते हुए इस ग्रन्थ में ३६ अध्ययन हैं। इनमें आचार-सम्बन्धी और तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी विवेचन है। आचार से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं—२रा परीषह ३रा चतुरङ्गीया ४था असंस्कृत ५वाँ अकाममरण ६ठा क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय ७वाँ एलक ८वाँ कापिलीय ९वाँ नमिप्रव्रज्या १ वाँ द्रुमपत्रक ११वाँ बहुश्रुत पूजा १२वाँ हरिकेशीय १३वाँ चित्तसम्भतीय १४वाँ इषुकारीय १५वाँ सभिक्ष १६वाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान १७वाँ पाप श्रमणीय १८वाँ संयतीय १९वाँ मृगापुत्र २ वाँ महानिग्रन्थीय २१वाँ समुद्रपालीन २२वाँ रथनेमी २३वाँ केशी गौतमीय २४वाँ समितीय २५वाँ यज्ञीय २६वाँ समाचारी २७वाँ खलुङ्कीय २८वाँ मोक्षमार्ग गति २९वाँ सम्यक्त्व-पराक्रम ३ वाँ तपोमार्ग ३१वाँ चरणविधि ३२वाँ प्रमाद स्थानीय ३४वाँ लेश्या और ३५वाँ अनगार। तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी अध्ययनो में ३३वाँ कर्मप्रकृति और ३६वाँ जीवाजीव विभक्ति हैं। लेकिन इन अध्ययनों म एक दूसर से काफी निरूपता है।

इन ३६ अध्ययनो के वर्णन नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

४८ गाथाओ से युक्त प्रथम अध्ययन म विनयधर्म का वर्णन किया गया है। इसम भिक्षु को भिक्षाचर्या विनीत एव अविनीत शिष्यों के गुण-दोषादि के साथ ही साथ गुरु के कर्तव्यों का भी वर्णन है।

दूसरे अ ययन म साधु के लिए २२ परीषह बताये गये हैं। प्रारम्भ के तीन सूत्र गद्य खण्ड मे और अन्त के ४६ श्लोक पद्य रूप म निबद्ध हैं।

तीसरे अध्ययन म मोक्ष प्राप्ति के साधन मनुष्यत्व श्रुति श्रद्धा और संयम धारण करने की शक्ति इन चार वस्तुओं को दुर्लभ कहा गया है। इस अध्ययन में २ गाथायें हैं।

चौथे अध्ययन की तेरह गाथाओ म संसार की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन किया गया है तथा भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त रहने का उपदेश दिया गया है।

पाँचवे अकाम-मरण नामक अध्ययन में भिक्षु और गृहस्थ के संयमी जीवन की तुलना है और सुकृत गृहस्थ की सुगति-देवगति तथा बाल व्यक्तियों के अकाम मरणादि के बारे में कहा गया है।

---

१ प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ १९३।
२ उत्तराध्ययनसूत्र २।२-४५।
३ वही ३।१।
४ वही ४।६।
५ वही ५।२ ।

छठे अध्ययन में १७ गाथाओं के अन्तगत जैन साध के आचार विचार का वणन है और इसलिए इसका नाम क्षल्लक निग्र थीय (जैन-साधु) रखा गया है।

सातव अध्ययन म तीस गाथाओ के अतगत इन्द्रियाँ क्षणिक हैं इनके विषय क्षणिक हैं। फलत इनसे मिलनेवाला सुख भी क्षणिक है। इन क्षणिक सुखों के प्रलोभनों म आकर भविष्य म होनवाले इनके दु खद परिणामों को साधक न भूले। साधक भ्रान्तिवश थोड से सुख के लिए अपनी कोई बडी हानि न करे। इस विषय को इस अध्ययन म बहुत सरल सुन्दर एव व्यावहारिक उदाहरणो से स्पष्ट किया गया है।

क्योकि आठवें अध्ययन के प्ररूपक कपिलऋषि है इसलिए इस अध्ययन का नाम कापिलीय रखा गया है। इसम कपिलमनि द्वारा चोरो को दिये गय सगीतात्मक उपदेशों का सग्रह ह। इस अध्ययन म लक्षणविद्या स्वप्नविद्या और अगविद्या का उपयोग साधु के लि वर्जित बताया गया ह। लोभ किस प्रकार बढ़ता ह इसका अनुभव चित्र इसम खीचा गया है। इसम २ गाथाय हैं।

नौव अध्ययन म नमिप्रव्र या का वर्णन है जिसम राजर्षि नमि का ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र के साथ आध्यात्मिक सवाद वर्णित ह। इस अध्ययन म ६२ गाथाय हैं।

आद्यपद्य के आधार पर दसव अ ययन का नाम द्रुमपत्रक रखा गया है जिसका अथ है वृक्ष का पका हुआ पत्ता। इस अध्ययन म भगवान महावीर द्वारा गौतम के बहान सभी साधको को आत्मसाधना म क्षणमात्र प्रमाद न करन का सन्देश दिया गया है। इसम अन्तमन के जागरण का उदघाष है जा प्रत्यक साधक के लिए ज्योतिस्तम्भ के समान है। इसम ३७ गाथाय हं। प्रत्यक गाथा के अन्त म समय गोयम मापमायए तथा अन्तिम गाथा म सिद्धि गइगए गोयमे पद का उल्लेख ह।

ग्यारहव अध्ययन म ३२ गाथाओ के अन्तगत विनीत को बहुश्रत और अविनीत को अबहुश्रत कहा गया है।

हरिकेशीय नामक बारहव अध्ययन म ४७ गाथाओ के अन्तगत हरिकेशिबल और ब्राह्मणो के मध्य हुए वार्तालाप में कमणा जातिवाद की स्थापना तप का प्रकष तथा अहिंसा यज्ञ की श्रष्ठता का प्रतिपादन किया गया ह।

तेरहव अध्ययन में चित्त और सम्भति नाम के चाण्डाल-पुत्रो की कथा है। इसमें ३५ गाथायें हैं। चित्त और सम्भति के नाम के कारण इस अध्ययन का नाम चित्तसंभतीय रखा गया ह।

इषुकारीय नामक चौदहव अध्ययन म ५३ गाथाय हैं जिनमें इषुकार

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र ७।१२।

नगर के राजा और रानी पुरोहित और उसकी पत्नी पुरोहित के दोनो पुत्रों के दीक्षा लेने का उल्लेख है।

पन्द्रहवें अध्ययन की १६ गाथाओं में सदभिक्षु के लक्षण बताये गये हैं। इस अध्ययन म अनेक दार्शनिक और सामाजिक तथ्यो का सकलन ह।

ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान नामक सोलहव अध्ययन में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए दस बातों का त्याग[१] आवश्यक बतलाया गया है। इसमें १७ गाथाय पद्य रूप म निबद्ध तथा १२ सूत्र गद्य रूप में हैं।

सत्रहव अध्ययन में पाप श्रमण के लक्षण बतलाये गये हैं। इसम २१ गाथाय हैं। तीसरी से लेकर उन्नीसवी गाथापयन्त प्रत्येक गाथा के अन्त में पावसमणित्ति वुच्चई पद आया है।

सजय नामक अठारहवें अध्ययन में सजय राजा का वणन है जिसने मुनि का उपदेश श्रवण कर श्रमण-धम में दीक्षा ग्रहण की। इसमें ५४ गाथाय हैं।

उन्नीसवें अध्ययन में ९९ गाथाओ के अन्तगत मृगापुत्र की दीक्षा का वर्णन ह जिनमें मृगापुत्र और उसके माता पिता के बीच होनवाला सवाद बहुत ही सुन्दर ह। मृगापुत्र को प्रधानता के कारण ही इस अध्ययन का नाम मृगापुत्रीय है।

बीसव अध्ययन का नाम महानिग्रन्थीय है। इसम अनाथीमुनि और राजा श्रेणिक के बीच हुए रोचक सवाद का वणन है। इसमें ६ गाथायें हैं।

समुद्रपालीय नामक इक्कीसव अध्ययन में वणिक पुत्र समुद्रपाल का प्रव्रज्या ग्रहण और सयमपूर्ण श्रमण जीवन वर्णित ह। इसम साधओं के आन्तरिक आचार के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने कहा है कि साध को प्रिय और अप्रिय दोनों बातो में सम रहना चाहिए। इसमें २४ गाथाय हैं।

बाईसव अध्ययन में अरिष्टनेमि और राजीमती की कथा है। राजीमती का रथनमि को उपदेश म आचार विचार का दिग्दर्शन होता है। विचलित रथनेमि को राजीमती ने इस प्रकार धिक्कारा है—हे कामभोग के अभिलाषी तेरे यश को धिक्कार है त वमन की हुई वस्तु को पुन उपभोग करना चाहता है इससे तो मर जाना अच्छा है।

तेईसवें अध्ययन में ८९ गाथाओं के अन्तर्गत पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार

१ उत्तराध्ययन १४।५३।

२ वही १६।१–१ ।

३ वही २२।४३ तुलनीय विसवन्त जातक ६९।

और महावीर वधमान के शिष्य गौतम के एतिहासिक सवाद का उल्लेख है। पाश्वनाथ न चातुर्याम का उपदेश दिया ह और महावीर ने पाँच महाव्रतो का पाश्वनाथ ने सचेल धर्म का प्ररूपण किया ह और महावीर न अचेल धर्म का।

अष्टप्रवचनमाता नामक चौबीसव अध्ययन में पाँच समितियों और तीन गुप्तियों का वणन ह। वर्णित है कि जो पण्डित साध हैं वे उक्त आठ प्रवचनमाता या पाँच समिति तथा तीन गुप्तियो के कथन के अनुसार सम्यक प्रकार आचरण करके शीघ्रता से ससार बन्धन से छट जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी होते हैं।

यज्ञीय नामक पचीसव अध्ययन म सच्चा यज्ञ श्रमण ब्राह्मण मनि और कर्मानुसारी जातिवाद की परिभाषा करते हुए साध के आचार का वणन किया गया है। इस अध्ययन म ४५ गाथाय हैं। इसकी १९ से २९ गाथाओ के अन्त म त वय बम माहण पद आया ह।

छब्बीसवें अध्ययन में समाचारी के दस भेद बताये गये हैं। समाचारी का अथ है सम्यक व्यवस्था। इसम साधक के परस्पर के व्यवहारो और कतव्यो का सकेत है। इसमें ५३ गाथायें हैं।

खलकीय नामक सत्ताईसव अध्ययन म दुष्ट बल के दृष्टान्त द्वारा अविनीत शिष्यो की क्रियाओ का वणन ह। इसम १७ गाथाय है।

मोक्षमाग नामक अटठाईसवें अध्ययन म ३६ गाथायें हैं जिनम रत्नत्रय माग का वर्णन होने से इसका नाम मोक्षमाग-गति ह।

सम्यक्त्व-पराक्रम नामक उनतीसव अध्ययन म ७३ स्थानो एव उनके फलो की विस्तृत विवेचना की गयी है जो सम्यक्त्व को पुष्ट करनवाले हैं। इसी प्रकार काल प्रतिलेखन प्रत्याख्यान वाचना अनुप्रेक्षा आदि विषयो का वणन है।

तपोमागगति नामक तीसव अध्ययन मे बताया गया है कि प्राणवध मृषावाद अदत्त मथन परिग्रह एव रात्रि भोजन से विरक्त होने से जीव आस्रवरहित होता है।

चरणविधि का अथ है–विवकमलक प्रवृत्ति। इसमें २१ गाथायें हैं जिसके अन्तगत साध के चारित्र और ज्ञान से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्तों के वणन के साथ ही आहार भय मैथन परिग्रह आदि से साध को मुक्त रहने का उपदेश दिया गया है।

१ उत्तराध्ययनसूत्र २४।२७।
२ वही २६।२–४।
३ वही ३ ।२ ३।

इन्द्रियों की रागद्वेषरूप प्रवृत्ति को प्रमादस्थानीय मानकर इस अध्ययन का नाम प्रमादस्थानीय रखा गया है। अशुभ प्रवृत्तियाँ प्रमादस्थान हैं। प्रमादस्थान का अथ है—वे काय जिन कार्यों से साधना में विघ्न उपस्थित होता है और साधक की प्रगति रुक जाती है।

कमप्रकृति नामक तैंतीसव अध्ययन म २५ गाथाओं के अन्तगत कर्मों के आठ भेदों तथा प्रभेदों को बतलाया गया है।

चौंतीसवें लेश्या अध्ययन म ६१ गाथाओं के अन्तगत लेश्याओ के प्रकार तथा उनके लक्षणो को बतलाया गया है।

पतीसव अध्ययन का नाम अनगार है। इसम २१ गाथाय हैं जिनके अन्तगत साध के निवासस्थान भोजन-ग्रहण विधि साधना विधि आदि बातों का वणन ह।

छत्तीसवें अध्ययन में जीव और अजीव का सविस्तार वणन होने से इसका नाम जीवाजीव विभक्ति रखा गया है। इसम २६९ गाथाय हैं।

इस तरह इन अध्ययनो म मुख्य रूप से ससार की असारता तथा साधु के आचार का वणन किया गया है। इससे इसके महत्त्व और प्राचीनता दोनो का बोध होता है। इस महत्त्व के कारण ही इसे मूलसूत्रो ग्रन्थो म गिना जाता है। इस महत्त्व के कारण ही कालान्तर में इस पर अनक टीकाय आदि लिखी गयी। जैकोबी शार्पेन्टियर विण्टरनित्स आदि विद्वानो ने इसकी तुल्ना बौद्धों के सुत्तनिपात जातक और धम्मपद आदि प्राचीन ग्रन्थो से की है। उदाहरणस्वरूप राजा नमि को बौद्ध-ग्रन्थों में प्रत्यक बुद्ध मानकर उसकी कठोर तपस्या का वर्णन किया गया है। हरिकेशिमुनि

१ शार्पेन्टियर उ भमिका पृ ४ तथा देखें उ आत्माराम टीका भूमिका प २२–२५ जैन-साहित्य का बृहद इतिहास भाग २ प १४७ १५२ १५६ १५७ १५९ १६३ १६५ तथा १६७।

धम्मपद	उत्तराध्ययन
१२।४	१।१५
८।४	९।३४
८।७	९।४
५।११	९।४४
२६।१९	२५।२७
२६।२५	२५।२९
२६।४	२५।३४

है कि त्रस अथवा स्थावर किसी भी जीव को मन वचन और शरीर के द्वारा जो स्वय कष्ट नही पहुँचाता और कष्ट देने के लिए किसीको प्रेरित नहीं करता और यदि कोई कष्ट देव तो उसको भला नही समझता अर्थात् जो तीन योग और तीन कारणो से अहिंसा धम का पालन करता है उसको आर्य (ब्राह्मण) कहा जाता है।

धम्मपद म कहा गया है कि सत्यों में चार आर्यसत्य श्रेष्ठ हैं। क्योंकि इन्हें आय ही जानते हैं वे ही उनका सम्यक ज्ञान करते हैं अत ये आर्यसत्य कहलाते है। य आर्यसत्य यथाथ हैं मिथ्या नही हैं क्योंकि दूसरों (जो आय नहीं हैं) से वे वैसे नही देखे जात हैं जैसे कि य आर्यों के द्वारा देखे जाते हैं। धम्मपद में जो बौद्ध ग्रन्थो का सार ह चार आयसत्यों की व्याख्या बहुत ही सुन्दर ढग से की गयी है जो बुद्ध धम और सघ की शरण में गया है वह मनुष्य दु ख दु ख की उत्पत्ति दु ख का विनाश अर्थात् निर्वाण और निर्वाण की ओर ले जानवाले श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग इन चार आयसत्यो को अपनी बुद्धि से देख लेता है। चार आयसत्य ये हैं—१ दु ख आयसत्य २ दु खसमुदय आर्यसत्य ३ दुःखनिरोध आर्यसत्य और (४) दु ख निरोधगामिनी प्रतिपद आयसत्य। इन आयसत्यो का ज्ञान किन्ही किन्हींको स्रोतापन्न अवस्था म आंशिक रूप में होता है और किन्ही किन्हीको सकृदागामी और अनागामी अवस्था म। किन्तु अहत-अवस्था में पूर्णरूप से इनका ज्ञान होता है। जिस सत्य की पहले जानकारी होती ह उसीका पूवनिर्देश किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि तृष्णा जो दु ख का हेतु ह उसका पूवनिर्देश क्यो नही है और दु ख जो तृष्णा के कारण उत्पन्न होता ह तथा जो फलरूप है उसका बाद में निर्देश क्यों नही है? इसका उत्तर यह है कि जिस बात में प्राणी फँसा है जिससे पीडित होता है जिससे मुक्ति चाहता है और जिसकी वह परीक्षा करता है वह और क्या है दु ख ही तो है और इसीलिए इसे ही पहला सत्य बतलाया गया है। मुमक्षु इसके बाद उसके हेतुरूप समदय सत्य (तृष्णा) और इसके बाद निरोध सत्य (निर्वाण) तथा उसके बाद माग (अष्टाङ्गिक माग) को खोजता है।

---

१ मग्गान चतुरो पदा—धम्मपद २७३।

२ धम्मपद गाथा-सख्या १९ ।

३ दुक्ख-दुक्ख समप्पाद दुक्खस्स च अतिक्कम।
अरियच्चटठङ्गिकं मग्ग दुक्ख पसमगामिन ॥
वही १९१।

४ बौद्ध योगी के पत्र पृ ११ १११।

१ दुःख

पालि बौद्ध-साहित्य में दुःख की व्याख्या सामान्यतः इस प्रकार से की गयी है यथा—जीवन दुःखदायी है पैदा होना दुःख है बढ़ा होना रोगी होना क्षीण होना मरना शोक करना रोना पीटना चिन्तित होना परेशान होना दुःख है अप्रिय के साथ संयोग प्रिय से वियोग इच्छा की पूर्ति न होना भी दुःख है संक्षेप में पाँचों उपादान स्कन्ध दुःख हैं। धम्मपद में कहा गया है प्रियों (पञ्चकाम गुणों) का संग न करे और न कभी अप्रियों का प्रियों का। न देखना और अप्रियों का दर्शन दुःखद होता है। अतः दुःख है दुःख सत्य है तथ्यरूप है अवितथ रूप है और अन्यथा नहीं है। धम्मपद में भी कहा गया है सभी संस्कार (पदार्थ) दुःखरूप हैं इस प्रकार जब प्रज्ञा से मनुष्य देखता है तब वह दुःखों से मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। यही निर्वाण का मार्ग है।

यह सब दुःख है (सर्वमिदं दुःखम्) पुरुषार्थ में दुःख है उसके रक्षण और विनाश में भी दुःख है। यह सारा संसार ही दुःख से व्याप्त है। दुःख से जल रहा है। इसलिए हँसी-खुशी और सुख इस संसार में कहाँ है ? धम्मपद में कहा गया है जब नित्य जल रहा है तो हँसी कैसी और आनन्द कैसा। अन्धकार से घिरे प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते ? संसार अनादि और अनन्त है और वह अविद्या (अज्ञान) तथा तृष्णा से संचालित है। इस संसार में न तो ऐसा कोई श्रमण ब्राह्मण देवता मार या अनन्यतम सत्त्व ही अवशिष्ट है जो संसार में विद्यमान निम्न पाँच वस्तुओं से अछूता रहा हो अर्थात् जो रोग के अधीन होते हुए भी रुग्ण न हुआ हो जो मृत्यु के आश्रित है वह न मरा हो जो क्षय के वशीभूत होते हुए भी क्षीण न हुआ हो और वह भी जो विनाश के मूल में बैठे होने पर भी नष्ट न हुआ हो।

बुद्ध के अनुसार प्राणियों की संसार यात्रा अनादिकाल से चली आ रही है। उनके उद्गम-स्थान का पता नहीं है जहाँ से चलकर अविद्या में फँसकर मनुष्य अपने को तृष्णा के बन्धन में बाँधकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। उनका कहना है कि न

---

१ दीघनिकाय २।३ ५ पृ २२७ तथा बुद्धचर्या १५।४७।

२ मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानं च दस्सनं॥

धम्मपद गाथा-संख्या २१ ।

३ वही २७८।

४ को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धापदीपं न गवेस्सथ॥ वही १४६।

आकाश में न समुद्र के मध्य में न पर्वतो की गुफा में जगत् में कोई ऐसा प्रदेश विद्यमान नहीं है जहाँ प्रवेश करके स्थित हुआ मनुष्य पापकम से मक्त हो सके। इस तरह दु ख की स्थिति का कथमपि अपलाप नही किया जा सकता। दु ख सर्वत्र व्याप्त है। लोग अविद्या में फँसे हैं दु ख को देखते हुए भी उसे नहीं समझते। उसे दूर करने का भी प्रयास नहीं करते। भगवान् कहते हैं कि दु ख हेय है। अत सत्त्वों को दु ख का अन्त करना चाहिए। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पच उपादानस्कन्ध रूप सज्ञा संस्कार विज्ञान और वेदना दु ख है। पंचोपादान स्कन्धों को हेतु तथा प्रत्ययसहित अनित्य अनात्म और दु खरूप ही कहा गया है।

इस प्रकार उपयक्त तथ्यो को देखने से पता चलता है कि जन्म दु ख है। रुग्णावस्था दु ख है। मृत्यु दु ख है ऐसी चीजो से मिलन जिनसे हम घणा करते हैं तथा एसी वस्तुओं से वियोग जिन्हें हम बहुत चाहते हैं दु ख है। एक व्यक्ति किसी चीज को चाहता है तो उस वस्तु का न पाना भी दु ख है। जन्म मृत्यु दु ख और प्रेम सावकालिक तथ्य हैं। ये सामजस्य के अभाव और असामजस्य की अवस्था के सूचक हैं। मनुष्य के द ख उसके आध्यात्मिक रोग की जड ही द्वन्द्व है। यह सावभौमिक है और हमारे अस्तित्व का अभिन्न अग है जो क्षणभगुर तथा नश्वर है। परन्तु इससे मक्ति पायी जा सकती है तथा अवश्य पायी जानी चाहिए।

२ दु खसमुदय

द्वितीय आयसत्य है—द खसमदय। समदय का अथ है कारण। यदि दु ख के कारण की हम पहचान कर लेते हैं और इसे दूर कर देते हैं तो द ख स्वत ही लप्त हो जायेगा। इसका कारण जीने की इच्छा या तन्हा है। मनुष्य को जहाँ सुख एव आनन्द मिलता है वहाँ उसकी प्रवृत्ति होती है। उसकी यह अधिक प्रवृत्ति या चाह ही तृष्णा कहलाती है। यह तृष्णा ही द ख का कारण है। तृष्णा ही सत्त्वों को पुन

---

१ न अन्तलिक्खे न समद्दमज्झे न पब्बतान विवर पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितो मच्चेय पापकम्मा॥
न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतान विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठित नप्पसहेय्यमच्चू॥
धम्मपद गाथा-सख्या १२७ १२८।

२ ओल्डेनबर्ग बुद्ध पृ २१६ २१७ डॉ राधाकृष्णन् एस भारतीय दशन पृ ३३३ फुटनोट ३ तथा डॉ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भमिका पृ १६।

३ देखिए डॉ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भूमिका पृ १६।

४ वही।

पुन उत्पन्न कराती ह अर्थात पौनभविकी ह नन्दी राग से सहगत है तृष्णा जहाँ-जहाँ सत्त्व उत्पन्न होते ह वहाँ-वहाँ अभिनन्दन (आसक्ति) करती-कराती है। धम्मपद में कहा गया है कि तृष्णा से शोक उत्पन्न होता ह तृष्णा से भय उत्पन्न होता ह तृष्णा से मक्त को शोक नही फिर भय कहाँ से ? इस प्रकार अपन को अच्छा लगनेवाले रूपादि विषयों में अभिनन्दन करनेवाली तृष्णा तत्र तत्राभिनन्दिनी कहलाती है।

अविद्या और कम द ख के हतु होने से समदय सत्य कहे गय हैं किन्तु गौण रूप से ही सही दु ख का तात्कालिक कारण तृष्णा है। धम्मपद में कहा गया है कि अविद्या परम मल है भिक्षओ इस मल को छोडकर निमल बनो। क्योकि तष्णा के अभाव से वे पुनभव उत्पन्न करन म समथ नही होते अतएव तृष्णा ही समदय सत्य कही गई है अविद्या और कर्म नही। अविद्या तो अनागत सस्कारों का कारण ह। इससे उन्हें को भी समदय कहा गया है। धम्मपद म कहा गया है कि रति (राग) के कारण शोक उत्पन्न होता है रति के कारण भय उत्पन्न होता है। रति से जो सर्वथा मक्त है उसे शोक नही होता फिर भय कहाँ से हो ? अतएव काम राग आदि होनेवाले कर्म को दु ख का कारण कहा गया ह। इस तरह से द ख की उत्पत्ति का कारण है तृष्णा प्यास विषयो की प्यास। यदि विषयो की प्यास हमारे हृदय म न हो तो हम इस ससार म न पड और न द ख भोग। तृष्णा सबसे बडा बन्धन ह जो हमें ससार तथा ससार के जीवो से बाँधे हुए ह। धम्मपद की यह उक्ति कि धीर विद्वान् पुरुष लोहे लकडी तथा रस्सी के बन्धन को दढ नही मानत वस्तुत दढ बन्धन है सारवान् पदार्थों में रक्त होना या मणि कुण्डल पुत्र तथा स्त्री म इच्छा का होना बिल्कुल ठीक है। मकडी जिस प्रकार अपने ही जाल बुनती ह और अपने ही उसीम बधी रहती है ससार के जीवों

---

१ दीघनिकाय २।३ ८ प २३ विसुद्धिमग्ग १६।३१ पृ ३४८ मज्झिम निकाय १।४८ प ६५।

२ तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भय।
तण्हाय विप्पमुत्तस्से नत्थि सोको कुतो भय॥

धम्मपद गाथा-सख्या २१६।

३ अविज्जा परम मल। एत मल पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो॥

वही २४३।

४ रतिया जायते सोको रतिया जायते भय।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय॥ वही २१४।

५ नत बल्ह बन्धनमाहु धीरा यदायस दारुज बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥ वही ३४५।

की दशा भी वैसी ही है। वे लोग तृष्णा से नाना प्रकार के विषयों में राग उत्पन्न करते हैं और इसी राग के बन्धन में अपने को बाँधकर दिन रात कष्ट उठाते हैं। तृष्णा तीन प्रकार की बतलायी गयी है

१ कामतृष्णा

यह नाना प्रकार के विषयों की कामना करती है।

२ भवतृष्णा

भव = ससार या जन्म अर्थात् इस ससार की सत्ता बनाये रखनेवाली तृष्णा। इस ससार की स्थिति के कारण हमीं हैं। हमारी तृष्णा ही इस ससार को उत्पन्न किए हुए है। ससार के रहने पर ही हमारी सुखवासना चरितार्थ होती है। अत इस ससार की तृष्णा भी तृष्णा का ही एक प्रकार है जो दु ख का कारण है।

३ विभवतृष्णा

उच्छेद-दृष्टि का नाम विभवतृष्णा है। विभव का अर्थ है उच्छेद ससार का नाश। उच्छेद-दृष्टि से युक्त राग ही विभवतृष्णा है। पूर्व-पूर्व भव की तृष्णा पश्चिम पश्चिम भव में उत्पन्न होनेवाले दु खों का समुदय होती है। अत तृष्णा समुदय सत्य कहलाती है। अविद्या कर्म व तृष्णा स सार के कारणरूप हैं अत तीनों पृथक-पृथक रूप से दु:ख के कारण कहे गये हैं।

३ दु खनिरोध

तृतीय आर्यसत्य का नाम दु खनिरोध है। निरोध शब्द का अर्थ नाश या त्याग है। जब दु ख और उसका कारण है तब उसके कारण का निरोध कर दु ख का भी निरोध किया जा सकता है। दु ख के कारण तृष्णा का निरोध ही 'दु ख-निरोध' है। पाँच काम गुणों में नहीं लगना उसमें आनन्द नहीं लेना उसमें नहीं डूबे रहने से तृष्णा का क्षय निरोध होता है। इससे ही सम्पूर्ण दु ख का निरोध होता है। यही दु:खनिरोध है।

धम्मपद में दु खनिरोध को बतलाते हुए निरोध शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से की गयी है कि किस मुख के निरोध से दु ख निरुद्ध हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो जैसे सुदृढ़ जड़ के सर्वथा नष्ट न होनेवाले तने से कटा वृक्ष फिर बढ़ जाता है वैसे ही

१ ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं सयं कत मक्कटं कोवजालं। धम्मपद ३४७।
२ दीघनिकाय २।३ ८ पृ २३ मज्झिमनिकाय १।४८ ४९ पृ० ६५ आदि।
३ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र ओरिजिन्स ऑव् बुद्धिज्म पृ ४३४ ३५।
४ देखिए संयुत्तनिकाय २।७ ८ पृष्ठ ८९।

तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दु ख बार बार उत्पन्न होता रहेगा। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा है कि समुदय के निरोध से ही दु ख का निरोध होता है। परमार्थ से दु खनिरोध निर्वाण ही है क्योंकि निर्वाण को पाकर यह तृष्णा निरुद्ध हो जाती है पृथक हो जाती है और रागरहित ही निरोध या निर्वाण कहलाता है। भगवान ने इसे एक दीपक की उपमा द्वारा इस तरह समझाया ह कि जैसे तेल और बत्ती के होने से प्रदीप जलता रहता है और उस प्रदीप में कोई समय-समय पर तेल न डाले और बत्ती को न उकसावे ठीक नही कर तो वह प्रदीप पहले के सभी आहार समाप्त हो जाने पर और नये न पाने से बुझ जायगा वैसे ही बन्धन म डालनेवाले धर्मों म बुराई ही बुराई मात्र देखते रहने से तृष्णा नही बढती प्रत्युत धीरे-धीरे यह समस्त दु खस्कन्ध ही निरुद्ध हो जायगे। तृष्णा के नाश से अविद्या का पूणतया प्रहाण हो जाता है। अविद्या के प्रहाण से सस्कार एव विज्ञान आदि समस्त प्रत्ययों का भी प्रहाण हो जाता है। इन समस्त दु खो का विप्रणाश होना ही निरोध कहलाता है।

४ दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद्

प्रतिपद् का अथ ह—माग। यही चतुर्थ आयसत्य है जो दु खनिरोध तक पहुँचानेवाला मार्ग है। दु खनिरोध की ओर ले जानवाला माग ही दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् है। मध्यम माग (मज्झिम पटिपदा) भी इसीका नाम है। दु ख की शान्ति अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति इसी माग के द्वारा सम्भव ह। लोक में जिससे जाया जाता है उसे माग कहते हैं। आचाय बुद्धघोष कहते हैं कि यह आलम्बन से तथा निर्वाण के अभिमुख होने से दु खनिरोध को प्राप्त कराता है अतएव इसे दु ख निरोध की ओर जानेवाला दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद कहा गया है। यह आय मार्ग है।

अब प्रश्न उठता है कि दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद आय सत्य क्या है? जो कामोपभोग का हीन ग्राम्य अशिष्ट अनाय अनथकर जीवन है और जो अपने शरीर

---

१ समुदय निरोधेन हि दुक्खं निरुज्झति।
न अञ्ञथा तेनाह यथापि मूले अनुपद्दवे ॥
दल्हे छिन्नो पि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहत निब्ब-त्तति दुक्खमिदं पुनप्पुन ॥ धम्मपद ३३८।

२ सयुत्तनिकाय २।८६ पृ ७४।

३ वही प ७४।

४ उपाध्याय बलदेव बौद्धदशन-मीमांसा पृ ५१।

५ अभिधर्मकोश पृ १ १३।

त्रिलक्षण अनित्य दुःख अनात्म

बौद्ध-दशन ससार को अनित्य दु ख और अनात्म इन तीन दृष्टियो से देखता ह । बौद्ध सभी पदार्थों को अनित्य मानते हैं । अनित्य का अथ विनाशशील माना जाता ह । लेकिन यदि अनित्य का अथ विनाशी करग तो हम फिर उच्छेदवाद की ओर होंग । वस्तुत अनित्य का अथ है परिवतनशील । परिवतन और विनाश अलग अलग हैं । विनाश में अभाव हो जाता है परिवतन म वह पुन एक नये रूप में उपस्थित हो जाता है । जसे बीज पौध के रूप म परिवर्तित हो जाता ह विनष्ट नही होता । सभी सस्कार क्षणिक हैं यह बौद्धो का प्रसिद्ध सिद्धान्त है । शास्ता ने भिक्षुओं को अन्तिम प्रेरणा देत हुए कहा सभी सस्कार अनित्य (नाशवान) हैं अत क्षण मात्र भी प्रमाद न कर जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो । यह सिद्धान्त भी प्रतीत्य समुत्पाद से ही निकलता है क्योंकि काय कारण या हेतु प्र ययवाद का यह नियम सभी पर लागू होता है । जो प्रती यसमत्पन्न होता ह उसीकी सत्ता होती है और वह अवश्य क्षणिक होता ह । जो क्षणिक नही होगा वह नि य हो जायेगा और जो नित्य होगा वह हेतुसमुत्पन्न न होगा । बौद्ध दशन म अनि य और क्षणिक का मतलब है सतत परिवर्तनशील । अथक्रियाकारित्व ही वस्तु का लक्षण है जो क्षणिक और प्रतीत्यसमुत्पन्न वस्तुओ मे ही सम्भव ह न कि नि य और निरपेक्ष वस्तुओ म । इस प्रकार प्रतीत्यसमत्पाद से अनित्यतावाद प्रतिफलित होता ह ।

ससार के प्रत्येक पदाथ को अनित्य एव नाशवान् मानना अनित्य भावना है । धन सम्पत्ति कुटुम्ब परिवार अधिकार वभव सभी कुछ क्षणभगुर ह । बुद्ध ने अपने उपासकों को अनेक प्रकार से अनि यता का बोध कराया ह । ससार में जो कुछ भी है वह सब अनित्य है सदा एक समान रहनवाला नही है । सभी उत्पत्ति स्थिति और नाश होने के तीन क्षणो म विभक्त है । रूप वेदना सज्ञा सस्कार और विज्ञान सभी अनित्य हैं । धम्मपद में कहा गया ह कि ससार के सब पदार्थ अनित्य हैं जब बुद्धिमान पुरुष इस तरह जान जाता है तब वह दु ख नहीं पाता । यह माग विशुद्धि का है ।

दुःख

ससार का प्रतिदिन का अनुभव स्पष्ट बतलाता है कि यहाँ सवत्र दु ख का

---

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग प ११९ ।

२ सयुत्तनिकाय २१ १ २ १ दूसरा भाग पृ ३३ ।

३ सब्बे सङ्खारा अनिच्चा ति यदापञ्ञाय पस्सति ।
अथनिब्बिन्दति दुक्खे एसमग्गो विसुद्धिया ॥
धम्मपद २७७ ।

राज्य है। जिधर दृष्टि डालिये उधर ही दु ख दिखायी पडता है। यह बात मिथ्या कथमपि नहीं हो सकती। पहले आयसत्य में यही तथ्य सूत्ररूप में व्यक्त है। दु ख की व्याख्या करते हुए तथागत का कथन है—जन्म वृद्धावस्था मरण शोक परिदेवना दौमनस्य उपायास सब दु ख हैं। अप्रिय वस्तु के साथ समागम प्रिय के साथ वियोग और ईप्सित की अप्राप्ति दु ख है। सक्षेप म राग के द्वारा उत्पन्न पाँचो उपादान स्कन्ध दु ख हैं।

जगत के प्रत्येक काय प्रत्येक घटना म दु ख की सत्ता है। प्रियतमा जिस प्रिय के समागम को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानकर नितान्त आनन्दमग्न रहती है उससे भी एक न एक दिन वियोग अवश्यम्भावी है। जिस द्रव्य के लिए मानवमात्र इतना परिश्रम करता है उसकी भी प्राप्ति नितान्त कष्टकारक है। जब अथ के उपार्जन रक्षण तथा व्यय सभी म दु ख है तब अर्थ को सुखकारक कैसे कहा जाय। यह ससार तो भव ज्वाला से प्रदीप्त भवन के समान है। मूढ़जन इस स्वरूप को न जानकर तरह-तरह के भोग विलास की सामग्री एकत्र करते हैं परन्तु देखते-देखते बाल की भीत को समान विशाल सौख्य का प्रासाद पृथ्वी पर लोटने लगता है उसके कण-कण छिन्न भि न होकर बिखर जात हैं। इस प्रकार परिश्रम तथा प्रयास से तैयार की गयी भोग सामग्री सुख न पदा कर दु ख ही पैदा करती है। अत दु ख प्रथम आर्यसत्य कहा गया है। साधारणजन प्रतिदिन उसका अनुभव करते हैं परन्तु उससे उद्विग्न नहीं होते। उसे साधारण घटना समझकर उसके आगे अपना शिर झुकाते हैं। परन्तु बुद्ध का अनुभव नितान्त सच्चा है उनका उद्वेग वास्तविक है। इस प्रकार बद्ध की दृष्टि में यह समग्र संसार दु ख ही दु ख है।

धम्मपद में भी कहा गया है कि सभी सस्कार (पदाथ) दु खरूप हैं इस प्रकार जब प्रज्ञा से मनुष्य देखता है तब वह दु खों से मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। यही निर्वाण का माग है।

अनात्म

अनात्म बौद्धधम का प्रधान मान्य सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है कि जगत् के समस्त पदार्थ स्वरूपशून्य हैं। वे कतिपय धर्मों के समुच्चयमात्र हैं उनकी स्वय स्वत त्र सत्ता नहीं है। अनात्म शब्द यही नहीं द्योतित करता है कि आत्मा का अभाव

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २२७।

२ सब्बे संखारा दुक्खाति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥
धम्मपद २७८।

उस पदार्थ की वस्तु सत्ता ही नहीं है जो प्रतीत्यसम प न्न नही है। इसलिए दार्शनिक-क्षत्र में यदि कोई बुद्ध की देन को एक शब्द में पूछना चाहे तो नि सन्देह यह कहा जा सकता है कि प्रतीत्यसमत्पाद का सिद्धान्त ही भगवान् बुद्ध की विशेषता है। कार्य-कारण का सिद्धान्त तो बुद्ध से पूव भी अ य दाशनिक-सम्प्रदायों में ज्ञात था किन्तु वह सभी वस्तुओ पर लाग नही था। ऐसे अनेक तत्त्व अछते रह जाते थे जिस पर यह नियम लाग न होता था जसे—आत्मा प्रकृति ईश्वर आकाश काल दिक् आदि। बद्ध ने सवप्रथम इस सिद्धान्त का गौरव प्रदान किया उसे सब पदार्थों पर लाग किया और उसे सत्ता का पर्यायवाची बनाया। यह बहुत बडी बात थी। इसने दार्शनिक जगत् मे हलचल पैदा की और दार्शनिक-विचारों के विकास की अनन्त सम्भावनाएँ उदभत कीं। यही कारण है कि बौद्ध-दशन गतिशीलता क्रियाशीलता और प्रगतिशीलता का पर्यायवाची बन सका।

बौद्ध-दशन आग चलकर वैभाषिक सौत्रान्तिक विज्ञानवाद (योगाचार) और शू यवाद (माध्यमिक) इन चार दाशनिक-सम्प्रदायों में विकसित हुआ किन्तु सभी का आधारभत सिद्धा त प्रतीत्यसमत्पाद ही था। प्रतीत्यसमत्पाद की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके ही उन्होने अपने-अपने दशन की नीव रखी। प्रतीत्यसमत्पाद की देशना भगवान बुद्ध ने की थी अत सभी बौद्ध-दार्शनिक सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्यों ने कहा कि जसी उन्होंने प्रतीत्यसमत्पाद की व्याख्या की वही बुद्ध का असली मन्तव्य था और वे ही उनके विचारों के वास्तविक उत्तराधिकारी तथा उनके सच्चे अनुयायी थे। इसी एक प्रतीत्यसमत्पाद की व्याख्या के आधार पर एक ओर स्थविरवादी वैभाषिक और सौत्रान्तिक आदि वस्तुवाद की स्थापना करते हैं तो दूसरी ओर विज्ञानवादी-योगाचार विज्ञानवाद की और शून्यवादी-माध्यमिक अपने शून्यवाद की। बौद्धों का सर्वप्रसिद्ध क्षणिकवाद का सिद्धान्त भी इसी प्रतीत्यसमत्पाद की सूक्ष्म व्याख्या की देन है। कहने का आशय यह है कि प्रतीत्यसमत्पाद एक ऐसा व्यापक और वैज्ञानिक सिद्धान्त था जिसने ज्ञान के विकास में अपूव योगदान किया।

प्रतीत्यसमत्पाद का अथ है हेतु-प्रत्ययों से उत्पाद। प्रत्येक वस्तु हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न (प्रतीत्यसमत्पन्न) है। जो हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न नहीं वह वस्तु ही नहीं अपितु अवस्तु और काल्पनिक है। इसी दृष्टि से आत्मा ईश्वर काल आदि अबौद्धों द्वारा कल्पित नित्य पदाथ अवस्तु सत् कल्पित एव भ्रान्त सिद्ध हो जाते हैं। इस तरह इस सिद्धान्त से शाश्वतवाद का निषेध हो जाता है। फिर भी हेतु-फल की शृंखला बराबर जन्म-जन्मान्तरपर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चलती रही है और वह तब तक

---

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ४४।

चलती रहती है जब तक निर्वाण प्राप्त नही कर लिया जाता। अत इस सिद्धान्त से चार्वाको का वह मत भी निराकृत हो जाता है जिसके अनुसार जीवन केवल वर्तमान ही है। इस तरह उच्छेदवाद का भी प्रतीत्यसमत्पाद द्वारा निषेध कर दिया जाता है। साथ ही अहेतुकवाद स्वभाववाद अक्रियावाद आदि अनक मतवादो के लिए कोई स्थान नही रह जाता।

निर्वचन

प्रतीत्यसमुत्पाद म प्रति का अथ प्राप्ति ह। इस उपसग के साथ गत्यथक इण धातु का योग है। उपसर्ग की वजह से धातु का अर्थ बदल जाता है। फलत प्रति-इ का अथ प्राप्ति होता है और क्त्वा प्रत्यय के योग से निष्पन्न प्रतीत्य का अथ है— प्राप्त करके। पद धातु सत्तार्थक है। सम उत् उपसगपूवक इसका अर्थ प्रादुर्भाव है। अत प्रतीत्यसमत्पाद का अथ हेतु प्रत्ययो को प्राप्त कर कार्य का उत्पाद होता है। इससे प्रतीत्यसमत्पाद की बौद्धधम म स्पष्ट महत्ता दृष्टिगोचर होती है।

द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद

प्रतीत्यसमत्पाद सिद्धान्त द्वारा ही बुद्ध ने सासारिक जीवन की सम्यक व्याख्या की और दु ख का कारण समझाया। दु ख अकारण नही सकारण है और कारण दूर करने पर दु ख से मक्ति पायी जा सकती ह। आयसत्यों के माध्यम से सक्षप में बद्ध न समझाया कि दु ख का कारण तृष्णा है। परन्तु इसी कारण प्रक्रिया के अन्वेषण का विकसित रूप १२ निदानों की शृखला में दिखाई पडता है। प्रतीत्यसमुत्पाद १२ निदान या अग यथाथ म कारणो या प्रत्ययों की ही शृखला ह। इन १२ अगो का वणन बौद्ध ग्रन्थो में इस प्रकार मिलता है— अविद्या प्रत्यय से संस्कार सस्कार प्रत्यय से विज्ञान विज्ञान प्रत्यय से नामरूप नामरूप-प्रत्यय से षडायतन षडायतन प्रत्यय से स्पश स्पश प्रत्यय से वेदना वेदना प्रत्यय से तृष्णा तृष्णा-प्रत्यय से उपादान उपादान प्रत्यय से भव भव प्रत्यय से जाति जाति प्रत्यय से जरा मरण शोक परिदेव दु ख दौमनस्य एव उपायास होते हैं। इस प्रकार समस्त दु ख स्कन्ध का समुदय होता ह यही प्रतीत्यसमुत्पाद है।

बद्ध के उपदेशों में द्वादशाङ्ग कही सक्षिप्त और कही विस्तृत है कही एक से बारह कही सात से बारह कही बारह से एक कही आठ से एक कही तीन से बारह

१ बौद्ध-संस्कृति का इतिहास भास्कर भागचन्द्र जैन प ९४।

२ अभिधर्मकोश भाष्य ३।२८ पृ १३८।

३ विनयपिटक महावग्ग १ पृ १ दीघनिकाय २।५५ पृ ४४ सयुत्तनिकाय २।१ पृ १ विसुद्धिमग्ग १७।२ पृ २६२।

त्रस का भेद लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि एकेन्द्रिय-सम्बन्धी स्थावर के पाँच भेद ही उपयुक्त हैं जो निम्न हैं—

१ पृथ्वीकायिक जीव

जिनका पृथ्वी ही शरीर है उन्हें पथ्वीकायिक जीव कहते हैं। इनके दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर (स्थल)। सूक्ष्म और बादर के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। बादर पर्याप्त के प्रथमत दो भद हैं—सुकोमल और कठिन। पुन सुकोमल पृथ्वी के ७ और कठिन पृथ्वी के ३६ भद बताये गये हैं। मृदु पथ्वी के ७ प्रकार हैं। इसी प्रकार कठिम पथ्वी के ३६ भेद बताय गये हैं।

२ अप्कायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही जल है अप्कायिक कहे जाते हैं। ग्रन्थ मे इनके

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २६।३ ३१।

२ दुविहा पुढवी जीवा उ सुहुमा बायरा तहा।
पज्ज-त्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो॥
वही ३६।७ ।

३ बायरा जे उ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोद्धव्वा सण्हा सत्त विहातहिं॥
वही ३६।७१।

४ किण्हा नीला य रुहिरा य हालिददा सुक्किला तहा।
पण्डु-पणगमट्टिया खरा छत्तीसई विहा॥
वही ३६।७२।

खरा छत्तीसईविहा॥
पुढवी य सक्करा बालुया य उवले सिक्ता य लोणसे।
अय-तम्ब-तउय-सीसगरुप्प-सुवण्णे यवेइरेय॥

चन्दण-गेरुय-हंसगब्भपुलए सोगन्धिए य बोद्धव्वे।
चन्दप्पह-वेरुलिए जलकन्ते सूरकन्ते य॥

वही ३६।७२–७६।

चार भेद बताये गये हैं यथा—सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त। बादर पर्याप्त जीव के पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है।

३ वनस्पतिकायिक जीव

वृक्ष पौधे लतायें आदि ही जिनके शरीर हैं उन्हें वनस्पतिकायिक जीव कहते हैं। पृथिवी के भेदों की तरह इसके भी सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार भेद बताये गये है। बादर-पर्याप्त-वनस्पतिकाय के साधारण शरीरवाली वनस्पति और दूसरी प्रत्येक शरीरवाली वनस्पति ऐसे दो भेद किये गये हैं। साधारण और प्रत्येक के भी प्रकारो का उल्लेख है।

४ अग्निकायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही अग्नि है अग्नि से पृथक नहीं हो सकते। पृथिवी

---

१ दुविहा आउजीवा उसुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।८४।

२ बायरा जे उ पज्जत्ता पचहा त पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से हरतणमहिया हिमे॥
वही ३६।८५।

३ दुविहा वणस्सई जीवा सुहुमा बायरा तहा।
पज्ज-त्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो॥
वही ३६।९२।

४ बायराजे उ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया।
साहारणसरीराय पत्तेगा य तहे व य॥
वही ३६।९३।

५ साहारणसरीरा उणगहा ते पकित्तिया।

॥
वही ३६।९६–९९।

मुसुण्ढी य हलिद्दाय डणगहा एवमायओ॥
पत्तेग सरीरा उणेगहा ते पकित्तिया।

हरिय काया य बोद्धव्वा पत्तया इति आहिया॥
वही ३६।९४ ९५।

की तरह इसके भी चार भेद हैं। उनम से बादर पर्याप्त अग्नि अनेक प्रकार से वणन की गयी है। अग्निकाय के अनेक भेद बताय गये है।

५ वायुकायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही वायु ह वायु से पथक नही हो सकते। वायुकाय के भी चार भेद हैं। बादर पर्याप्त वायु के पाँच भद हैं।

इस तरह सक्षप से बादर (स्थल) एकेन्द्रिय स्थावर जीवो का विभाजन ग्रन्थ में किया गया है। इनकी आयु (भवस्थिति) कम-से कम अन्तमहूर्त एक समय से लेकर ४८ मिनट तक की समय ह तथा अधिक से अधिक पथिवीकायिक की २२ हजार वर्ष अप्काय की ७ हजार वष वनस्पतिकाय की १ हजार वष अग्निकाय (तेजर काय) की तीन दिन रात और वायुकाय की तीन हजार वष की है। इस आयु के पूर्ण होने के बाद ये जीव नियम से एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं।

त्रस जीव

दो इन्द्रियो से लेकर पाँच इन्द्रियोवाले जीव त्रस कहलाते हैं। त्रस जीवो के चार भेद हैं।

---

१ दविहा तेउजीवा उ सुहुमा बायरा तहा।
पज्ज तमपज्जत्ता एवमेए दहा पुणो ॥ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१ ८।

२ बायरा जेउ प ज्जत्ता णगहा ते वियाहिया।
इगाले मुम्मुर अग्गी अच्चि जाला तहव य ॥
उक्का वि ज य बोद्धव्वाठोगहा एवमायओ।
एग विहमणोणत्ता सहुमा ते वियाहिया ॥
वही ३६।१ ९ ११ ।

३ दुविहा वाउजीवा उ सुहुमा बायरा तहा।
प ज्जत्तमपज्जत्ता एवमए दुहा पुणो ॥
वही ३६।११७।

४ बायराजे उ पज्जत्ता पचहा त पकित्तिया।
उक्कलिया-मण्डलिया घण गुजा सुद्धवायाय ॥
सवटठगवाते य डणेगविहा एवमायओ ॥
वही ३६।११८ ११९।

५ वही ३६।८ तथा देखिए वही ३६।८८ १ २ ११३ १२२।

६ ओराला तसा जे उ चउहा ते पकित्तिया।
बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरो-पचिन्दिया चेव ॥ वही ३६।१२६।

१ द्वीन्द्रिय जीव

जिनमें स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ हों वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद किये गये हैं। इसके अतिरिक्त भी इनके अनेक भेद ग्रन्थ में दिखाई देते हैं।

२ त्रीन्द्रिय जीव

स्पशन रसना और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त जीव त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। इसके भी पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद हैं। त्रीन्द्रिय जीवो के जितने उपभेद हैं उनके बारे में ग्रन्थ में बताया गया है।

३ चतुरिन्द्रिय जीव

स्पर्शन रसना घ्राण और चक्षु इन चार इन्द्रियो से युक्त जीव चतुरिन्द्रिय जीव कहलाते हैं। ये जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इनके उपभेदो के बारे म भी ग्र न्थ म उल्लेख किया गया है।

---

१ बेइन्दिया उजे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
प ज-त्तमपज्जत्ता तेसि भेए सुणेह मे॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१२७।

२ किमिणो सो मगला चेव अलसा माइवाहया।

इइ बइंदया एए णेगहा एवमायओ॥
वही ३६।१२८–१३ ।

३ तेइन्दिया उजे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता तेसि भेए सुणेह मे॥
वही ३६।१३६।

४ कुन्थु पिवीलि-उड्डसा उक्क लहेहिया तहा।

इन्द गोवगमाईया णेगहा एवमायओ॥
वही ३६।१३७–१३९।

५ चउरिन्दिया उजे जीवा तेसि भेए सुणे हमे।
वही ३६।१४५।

६ अन्धिया पोत्तिया चेव माच्छया मसगा तहा।

इइ चउरिन्दिया एए णगहा एवमायओ॥ वही ३६।१४६–१४९।

उपर्युक्त तीना प्रकार के जीव स्थल होने से लोक के एकदेश मे रहते हैं। ये अनादिकाल से चले आ रहे ह और अनन्त काल तक रहगे परन्तु किसी जीवविशेष की स्थिति की अपेक्षा सादि और सान्त हैं। इन सभी की स्थिति कम-से-कम अन्त मुहूर्त है तथा अधिक-से अधिक द्वीन्द्रिय की १२ वष त्रीन्द्रिय की ४९ दिन चतुरिन्द्रिय की ६ मास है। रूपादि के तारतम्य से इनके हजारों भेद हो सकते है। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीव तिर्यञ्चों की ही श्रेणी म आते हैं।

४ पञ्चेन्द्रिय जीव

स्पशन रसना घ्राण चक्ष और कण इन पांच इन्द्रियों से युक्त जीव पञ्चेन्द्रिय कहलाते है। इनके मुख्यत चार प्रकार ह जो निम्नलिखित हैं—

---

१ लोगे गदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१३ ।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव के लिए देखिए।
वही ३६।१३९ १४९।

२ सतइ पप्पडणाइया अप ज्जवसिया विय।
ठिइ पडुच्च साईया सप ज्जवसिया विय॥
वही ३६।१३१।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव के लिए देखिए।
वही ३६।१४ १५ ।

३ वासाइ बारसे व उ उक्कोसेण वियाहिया।
बेइन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥
वही ३६।१३२।
एगूणपण्ण होरत्ता उक्को सेण वियाहिया।
तेइन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥
वही ३६।१४१।
छच्चेव य मासा उ उक्कोसेण वियाहिया।
चउरिन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥
वही ३६।१५१।

४ वही ३६।१३५।

५ पंचिदिया उ जे जीवा चउव्विहा ते वियाहिया।
नेरइया तिरिक्खा य मणया देवा य आहिया॥
वही ३६।१५५।

१ नारकी जीव

अधोलोक में निवास करनेवाले जीव नारकी कहे जाते हैं। अधोलोक में सात नरक-भूमियाँ हैं जिनका कि ग्रन्थ में निर्देश किया गया है। इनकी अधिकतम आयु ऊपर से नीचे के नरकों में क्रमश १ सागर ३ सागर ७ सागर १ सागर १७ सागर २२ सागर और ३३ सागर है। निम्नतम आयु प्रथम नरक की १ हजार वर्ष तथा अन्य नरकों में पूव २ के नरकों की उत्कृष्ट आयु ही आगे २ के नरकों की निम्नतम आयु है।

२ तिर्यञ्च

एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रियवाले जीव तथा पंच इन्द्रियों में पशु-पक्षी आदि तिर्यञ्च कहलाते हैं। तियञ्च अविसमूर्च्छिम और गर्भज भेद से दो प्रकार के हैं। दोनों के पुन जल स्थल और आकाश में चलने की शक्ति के भेद से तीन भेद किये गये हैं।

(क) जलचर तिर्यञ्च

जल में चलने फिरने के कारण इन्हें जलचर कहते हैं। ग्रन्थ में इनके पाँच भेद बताये गये हैं।

(ख) स्थलचर

स्थल (भमि) में चलने के कारण इन्हें स्थलचर कहते हैं। इनकी मुख्य दो

---

१ नेरइया सत्तविहा सत्तहापरिकित्तिया ॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१५६ १५७।

२ वही ३६।१६ –१६६।

३ पचिन्दिय तिरिक्खाओ दुविहा ते वियाहिया।
सम्मच्छि मतिरिक्खाओ गब्भवक्कान्तया तहा ॥

वही ३६।१७ ।

४ दुविहावि ते भवे तिविहा जलयरा थलयरा तहा।
खहयरा य बोद्धव्वा तेसिं भेए सणेह मे ॥

वही ३६।१७१।

५ मच्छा य कच्छभा य गाहा य मगरा तहा।
सुसुमारा य बोद्धव्वा पंचहा जलयराहिया ॥

वही ३६।१७२।

जातियाँ हैं—चतुष्पद और परिसर्प। चतुष्पद के चार प्रकार बताये गय हैं। इसी प्रकार परिसप की मख्य दो जातियाँ हैं।

(ग) नभचर

आकाश में स्वच्छन्द विहार करने मे समथ जीव नभचर कहलाते हैं। ऐसे जीव मख्यतया चार प्रकार के हैं।

इस तरह पञ्चेद्रिय तियञ्च मख्यत तीन प्रकार के हैं। इनकी आयु निम्नतम अन्तर्मुहूर्त तथा अधिकतम १ करोड पूव जलचर की ३ प योपम स्थलचर की तथा असख्यय भाग पल्योपम की ह। शेष क्षत्र एव कालकृत वर्णन द्वीन्द्रियादि की तरह हैं।

---

१ चउप्पया य परिसप्पा दविहा थलयरा भवे ॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१७९।

२ एगखुरा दखुरा चेव गण्डीपय-सणप्पया।
हयमाइ-गोणमाइ गयमाइ सीहमाइणो ॥

वही ३६।१८ ।

३ भुओ रगपरिसप्पा य परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाई य एक्केक्का हण गहा भवे ॥

वही ३६।१८१।

४ चम्मे उ लोम पक्खी य तइया समुग्गपाक्खया।
विययपक्खी य बोद्धव्वा पक्खिणो य चउव्विहा ॥

वही ३६।१८८।

५ ७ लाख ५६ हजार करोड वर्षों का एक पूव होता ह।

वही आत्माराम टीका प १७४५।

६ एगा य पुव्व कोडीओ उक्कोसेण वियाहिया।
आउटिठई जलयराणं अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥ वही ३६।१७५
पलिओवमाउ तिण्णि उ उक्कोसेण वियाहिया।
आउटिठई थल यराण अ तोमुहुत्त जहन्निया ॥ वही ३६।१८४
पलि ओवमस्स भागो असखेज्जइमो भवे।
आउटिठई खहयराण अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥

वही ३६।१९१।

१ मनुष्य

ससारी जीवों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है और चार दुर्लभ अगों की प्राप्ति में एक मनुष्य-जन्म भी है।[1] मनुष्य पर्याय की प्राप्ति पुण्यकर्म-विशेष से होती है। उत्तराध्ययन में उत्पत्ति-स्थान की दृष्टि से सम्मूर्च्छित और गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) मनुष्य के ये दो भेद किये गये हैं। गर्भ से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तीन प्रकार के हैं—कर्मभूमिक अकममभिक और अन्तरद्वीपक। ग्रन्थ में इनके सख्यागत भेदों का १५ ३ और २८ इस प्रकार क्रमपूर्वक वर्णन किया गया है। इनकी कम-से-कम आयु अन्तमूहूर्त तथा अधिक-से अधिक तीन प ्योपम बतलायी गयी है। ग्रन्थ में एक जगह इनकी आयु सौ वष से कम मिलती है।

---

१ चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्त सुइ सद्धा संजमम्मि य वीरिय॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३।१।

तथा— दुल्लहे खलु माणसे भव चिरकालण वि सव्वपाणिणां।

वही ४।४१६।

२ कम्माण तु पहाणाए आणपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययतिमणुस्सय॥

वही ३।७ ६ २ ३।६ २ २।११ २२।३८।

३ मणुया दुविह भेया उत मे कित्तयओ सुण।
समुच्छिमा य मणुया ग भवक्कान्तिया तहा॥

वही ३६।१९५।

४ गब्भवक्कात्तया जेउ तिविहा ते वियाहिया।
अकम्म-कम्मभूमाय अन्तरद् दीवया तहा॥

वही ३६।१९६।

५ पन्नरस-तीसइ-विहा भेया अटठवीसइ।
सखा उकमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया॥

वही ३६।१९७।

६ पालि ओवमाइ तिण्णि उ उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाण अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥

वही ३६।२ ।

७ जाणि जीयन्ति दुम्मेहा ऊणे वाससयाउए॥

वही ७।१३।

४ देव जीव

पुण्य कर्मों का फल भोगने के लिए जीव देव पर्याय को प्राप्त करता है। भौमय व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक ये चार प्रकार के देव कहे जाते हैं। इनके अन्य अवान्तर प्रमुख २५ भेद हैं। परन्तु इकतीसव अध्ययन में २४ प्रकार के देवों की सख्या का उल्लेख है।

१ भवनपति या भवनवासी देव

भवनो में उत्पन्न होनवाले देवो को भवनपति या भवनवासी कहते हैं। इनकी दस जातियाँ हैं।

२ व्यन्तरदेव

जिनके उत्कष और अपकषमय रूप विशेष हैं तथा गिरि कन्दरा और वृक्ष के विवरादि में जिनका निवास है उनको व्यन्तरदेव कहत हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में इनकी सख्या आठ बतायी गयी है।

---

१ धीरस्स पस्स धीरत्त सव्वधम्माणवत्तिणो।
चिच्चा अधम्म धम्मिटठे देवेसु उववज्जई॥

वही ७।२९ तथा २१ २६।

२ देवा चउव्विहा वुत्ता ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज-वाणम तर-जोइस वेमाणिया तहा॥

वही ३६।२ ४ तथा ३४।५१।

३ दसहा उभवणवासी अटठहा वण चारिणो।
पचविहा जोइसिया दुविहा वेमाणिया तहा॥

वही ३६।२ ५।

४ स्वाहिएसु सुरेसू अ।

वही ३१।१६।

५ असुरा नागसु वण्णा विज्ज अग्गी य आहिया।
दीवो दहि दिसा वाया थणिया भवणवासिणो॥

वही ३६।२ ५।

६ पिसायभया जक्खा य रक्खसा किन्नराकिंपुरिसा।
महोरगा य गधव्वा अटठविहा वाणमतरा॥

वही ३६।२ ६।

व्यक्ति का शरीर शुभ कर्मोदययुक्त है अर्थात् वह व्यक्ति सब प्रकार से सुखी है। इसी तरह जो व्यक्ति पापी होता ह वह सब प्रकार से दु खी होता है। इस प्रकार पुण्य और पाप का फल सुख और दुःख है। सुख एव दु ख यक्ति के व्यक्तित्व अर्थात् शारीरिक एव मानसिक गठन पर अवलम्बित है जिसका निर्माण पुण्य और पाप अर्थात् शुभ और अशुभ कर्मों के आधार से होता ह।

पण्य और पाप दोनो बन्धनरूप हैं अत मोक्ष-साधना के लिए हेय माने गये हैं। पारमार्थिक दष्टि से पुण्य और पाप दोनो म भेद नही किया जा सकता क्योंकि दोनो ही अन्ततोगत्वा बन्धन के हेतु है इनका भेद केवल यावहारिक स्तर पर है। दोनो का क्षय करन से ही मुक्ति मिलती है।

पण्य आध्यात्मिक साधना म सहायक तत्त्व ह। शुभ कम पदगल का नाम पण्य है। पण्य के कारण अनेक ह। यथा—दीन दु खी पर करुणा करना उनकी सेवा शुश्रषा करना दान देना आदि अनेक प्रकार से पण्योपाजन किया जाता ह। जैनधम में मुनि सुशीलकुमार ने पण्य की उपमा वायु से की ह। इसी प्रकार जैन आचार्यों के अनसार जिस विचार एव आचार से अपना और दूसरो का अहित हो वह पाप है। विचारको के अनुसार पापकम की उत्पत्ति के स्थान तीन हैं--राग द्वेष और मोह। लेकिन उत्तरा ययन म पापकम की उ पत्ति के स्थान राग और द्वेष ये दो ही मान गय हैं। इस प्रकार पापकर्मों का आचरण करनेवाले सभी जीव इस लोक तथा परलोक म दु ख को प्राप्त होते है। इसलिए पापकर्मों के बदले पण्य (शुभ) कर्मों का ही आचरण करना चाहिए। उत्तरा ययनसूत्र के १९व अध्ययन म मृगापुत्र

---

१ उत्तराध्ययन २।१४।

२ दुविह खवेऊण य पणपाव निरगण सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समदद व महाभवोघ समुददपाले अपणागम गए॥
वही २१।२४।

३ जनधम मुनि सुशीलकुमार प ८४।

४ रागद्दोसे य दो पावे पावकम्म पवत्तेण।
उत्तराध्ययनसूत्र ३१।३।

५ एव पयापेच्च इह च लोए
कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि॥
वही ४।३।

६ हुयासण जलन्तम्मि चियासुमहिसो विव।
दड्ढो पक्को य अवसो पावकम्महि पाविओ॥ वही १९।५७।

अपन उपभोग में आई हुई नरक-सम्बन्धी यातना का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार समुद्रपालीय नामक इक्कीसवें अध्ययन में चोर की अत्यन्त शोचनीय दशा को देखकर वैराग्य उत्पन्न समुद्रपाल कहने लगता है कि अशुभ कर्मों के आचरण का ऐसा ही कटु परिणाम होता है। साराश यह ह कि जो अशुभ कम हैं उनका अन्तिम फल अशुभ अर्थात् दु खरूप ही होगा।

भारतीय चिन्तको की दृष्टि मे पण्य और पाप-सम्बन्धी समग्र चिन्तन का सार इस कथन में समाविष्ट है कि दूसरो की भलाई करना पण्य और कष्ट देना पाप है जिसके कथन से पापो का विच्छद हो जावे उसे प्रायश्चित्त कहते हैं इसलिए आलोचना आदि प्रायश्चित्त से पापो की विशुद्धि होती है और पापों की विशुद्धि से इस जीव का चारित्र अतिचार से रहित हो जाता है तथा विषयों से विरक्त रहनवाला जीव नये पापकर्मों का उपाजन नही करता और पूव म सचित किए हुओं का नाश कर देता है। इस प्रकार पूर्वसचित कर्मों का नाश और नवीन कर्मों के बन्ध का अभाव हो जाने से उस जीव को ज म मरण की परम्परा म नही आना पडता।

५ आस्रव तत्त्व

पुण्य-पापरूप कम आन को आस्रव कहते हैं। परन्तु आस्रव से मख्यतया पापास्रव को समझा जाता है। इसीलिए उत्तराध्ययन में पापास्रव के पाँच भेदों का सकेत किया गया है यद्यपि उनके नामों का उल्लेख नही है। उपर्युक्त पाँच प्रमख आस्रव द्वार या बन्ध हेतुओ को पुन अनेक भेद प्रभदो में वर्गीकृत किया गया है जिनका केवल नामोल्लेख करना पर्याप्त है। आत्मा में कम के आने के द्वाररूप आस्रव के मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग ये पाँच भेद बताये गये हैं जो कि बन्ध के कारण हैं। इन्हें आस्रव प्रत्यय भी कहते हैं।

---

१ अहो सुभाण कम्माण निज्जाण पावग इम॥

उत्तराध्ययनसूत्र २१।९।

२ पायच्छित्त करणेण पावकम्म विसोहिं जणयइ निरइयारे यावि भवइ।

वही २९।१७।

३ विणियटठणयाएण पावकम्माण अकरणयाए अब्भुट्ठेइ।
पुव्व बद्धाण य निज्जरणयागत नियत्तेइ तओ पच्छाचाउरतं संसार कन्तारं वीइवयइ। वही २९।३३।

४ तत्त्वार्थसूत्र अ ६ सू १५।

५ पचासवप्पवत्तो। उत्तराध्ययनसूत्र ३४।२१।

एक नौका संसाररूपी समुद्र में तैर रही है जिसमें दो छिद्र हैं। उनमें से एक से गन्दा और दूसरे से साफ पानी आ रहा है। पानी के आते रहन से नाव अब डूबने ही वाली है कि नाव का मालिक उन दोनो छिद्रो को बन्द कर देता है जिनसे पानी अन्दर प्रवेश कर रहा था और फिर दोनों हाथों से उस भरे हुए पानी को उलीचकर निकालने लगता है। धीरे धीर वह नौका पानी से खाली हो जाती ह और पानी की सतह पर आकर अभीष्ट स्थान को प्राप्त करा देती है। इस तरह इस दृष्टान्त म नौका अजीव तत्त्व और नाविक जीव तत्त्व है। गन्दे और साफ पानी पाप और पुण्य के प्रतीक हैं।

जल का नाव में प्रवेश करना आस्रव एकत्रित होना बन्ध पानी आनेवाले छिद्रो को बन्द करना सवर नाव से पानी को उलीचना निजरा तथा जल के निकल जाने पर नाव का सतह पर आ जाना मोक्ष है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त तत्त्व-याजना में जीव और अजीव ज्ञेयतत्त्व माने गय हैं जब कि पाप आस्रव और बन्ध ये तीनों त्याज्य तथा पुण्य सवर निजरा और मोक्ष ये चारो उपादेय मान गय है। पाप आस्रव और बन्ध इन तीन से बचना चाहिए तथा पुण्य सवर और निजरा इन तीन का आचरण करना चाहिए। अन्तिम तत्त्व मोक्ष है जिनकी प्राप्ति के लिए इन सबका आचरण किया जाता है। यद्यपि निर्वाण के साधक के लिए पुण्य का आचरण भी लक्ष्य नहीं है फिर भी साधना-माग मे सहायक होन के का ण उसकी आवश्यकता स्वीकार की गयी ह। लेकिन शास्त्रकारों ने पुण्य को भी त्याज्य ही माना ह। इस प्रकार जीव और अजीव ये दो ज्ञय तथा आस्रव सवर निजरा और मोक्ष उपादेय माने गये हैं।

तुलनात्मक अध्ययन

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र में प्रतिपादित तत्त्व-योजना की तुलना करने पर पता चलता है कि दु खो की अनुभति प्रत्येक प्राणी को कट मालम होती ह। अतः वे दु खों से छटकारा पाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते देखे जाते हैं। सासारिक जितने भी प्रयत्न हैं वे सब क्षणिक सुख को देने के कारण वास्तव मे दुःखरूप ही हैं। सच्चे और अविनश्वर सुख की प्राप्ति के लिए चेतन और अचेतन के सयोग और वियोग की आध्यात्मिक प्रक्रिया को जिन नौ तथ्यो (सत्यो) मे विभाजित किया है उनमें पूण विश्वास उनका पूण ज्ञान और तदनुसार आचरण आवश्यक है। उन नौ तथ्यों के क्रमश नाम हैं—चेतन (जीव) अचेतन (अजीव) चेतन और अचेतन की सम्बन्धावस्था (बन्ध) अहिंसादि शुभ काय (पुण्य) हिंसादि अशुभ काय

१ उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४।

(पाप) अचेतन का चेतन के साथ सम्बन्ध करानेवाले कारण का निरोध (सबर) चेतन से अचेतन का अशत पृथक्करण (निर्जरा) तथा चेतन का पूर्ण स्वातन्त्र्य (मोक्ष) । इन चेतन अचेतन और उनके सयोग वियोग की कारण-कार्य-शृङ्खला के त्रिकाल सत्य होने से इन्हे तथ्य या सत्य कहा गया है । इन्हे मुख्यत पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ चेतन और अचेतन तत्त्व—जीव और अजीव

२ ससार या दु ख की अवस्था—बन्ध

३ ससार या दु ख के कारण—पुण्य पाप और आस्रव

४ ससार या दु ख से निवृत्ति का उपाय—सवर और निर्जरा

५ ससार या दु ख से पूर्ण निवृत्ति—मोक्ष ।

ससार या दु ख का कारण कर्म बन्धन है और उससे छुटकारा पाना मोक्ष है । चेतन ही बन्धन और मोक्ष को प्राप्त करता है तथा अचेतन (कर्म) से बन्धन और मोक्ष होता है । बन्धन में कारण है पुण्य और पापरूप प्रवृत्ति जिससे प्रेरित होकर अचेतन (कर्म) चेतन के पास आकर बन्ध को प्राप्त होते हैं । इन अचेतन कर्मों के आने को रोकना तथा पहले से आये हुए कर्मों को पृथक करने रूप सवर और निर्जरा मोक्ष के प्रतिकारण हैं । इस तरह बन्ध मोक्ष चेतन अचेतन पुण्य पाप आस्रव सवर और निर्जरा ये नौ सार्वभौम सत्य होने से तथ्य कहे गये हैं ।

इसी तथ्य का साक्षात्कार भगवान बुद्ध ने भी किया और उन्होंने इसका ही एक दूसरे ढग से चतुरार्य सत्यों के रूप में उपदेश दिया । चूँकि धम्मपद में कोई स्थायी चेतन व अचेतन पदार्थ स्वीकार नहीं किया गया है । अत ऊपर पाँच भागो में विभाजित ९ तथ्यो में से प्रथम भाग को छोडकर शेष चार रूपों में वर्णन किया गया है । —

१ दु ख सत्य है

ससार में जन्म जरा मरण इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदि दु ख देखे जाते हैं । अतः ये सत्य हैं ।

२ दु खों के कारण सत्य हैं (दु खसमुदय सत्य)

जब दु ख हैं तो दु ख के कारण भी अवश्य हैं । तृष्णा सब प्रकार के दु खों की कारण है ।

३ दु खनिरोध सत्य

यदि दु ख और दु ख के कारण है तो कारण के नाश होने पर दुःख का भी विनाश होना चाहिए ।

---

१ धम्मपद २७३ ।

४ दु खनिरोध मार्ग सत्य

दु खों को दूर करने का रास्ता भी है। अत यह भी सत्य है।

इस तरह चेतन अचेतन द्रव्य हैं या नही परमार्थ म सुख है या नही इसका कोई समुचित उत्तर न देकर भगवान बुद्ध ने यह कहा कि उपरोक्त चार बातें सत्य हैं। दु ख से छटकारा चाहते हो तो इन आर्य सत्यो पर विश्वास करके दु ख-निरोध के मार्ग का अनुसरण करो। दु ख-निरोध के मार्ग में जिन उपायों को धम्मपद में बतलाया गया है वे ही प्राय उत्तराध्ययन में हैं अन्तर इतना ही है कि जहाँ बौद्ध-दर्शन आत्मा की अभाव (नैरात्म्य) की भावना पर जोर देता है वहाँ उत्तराध्ययन उपनिषदो की तरह आत्मा के सदभाव की भावना पर जोर देता है।

उपर्युक्त चार तत्त्वों की तुलना उत्तराध्ययनसूत्र के जैन-तत्त्व-योजना से निम्न रूप म की जा सकती है। धम्मपद का दु ख उत्तराध्ययनसूत्र के बन्धन के समान है जब कि दु ख हेतु की तुलना आस्रव से की जा सकती है क्योंकि जैन परम्परा म आस्रव को बन्धन का और बौद्ध-परम्परा मे दु ख हेतु (प्रतीत्यसमुत्पाद) को दु ख का कारण माना गया है। इसी प्रकार दु ख निरोध का मार्ग (अष्टांग मार्ग) उत्तराध्ययन के संवर और निर्जरा से तुलनीय है। दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् या निर्वाण की तुलना उत्तराध्ययन के मोक्ष से की जा सकती है।

धम्मपद	उत्तराध्ययनसूत्र
१ दु ख	१ बन्धन
२ दु ख हेतु (प्रतीत्यसमुत्पाद)	२ आस्रव
३ दु खनिरोध का मार्ग (अष्टाङ्ग मार्ग)	३ संवर और निर्जरा
४ दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् (निर्वाण)	४ मोक्ष (निर्वाण)

अध्याय ३

धम्मपद के धार्मिक सिद्धान्त और उत्तराध्ययन में प्रतिपादित धार्मिक सिद्धान्तो से तुलना

प्रस्तुत अध्याय म ध मपद के आधार पर बद्ध अर्हत त्रिशरण निर्वाण धम कम अनुप्रेक्षा आदि बौद्ध मा यताओ का विवेचन है और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर समानान्तर अथवा सदृश जैन-मा यताओ से तुलना मक अध्ययन ह ।

बुद्ध

जिस समय भगवान् बद्ध का लोक म आविर्भाव हुआ उस समय देश में अनेक मतवाद प्रचलित थे । लोगो की जिज्ञासा जाग उठी थी और विचार-जगत म उथल पुथल हो रही थी । परलोक ह या नही कम है या नही कर्मों का पल (विपाक) होता है या नही इस प्रकार के प्रश्नो के प्रति लोगो के हृदय म बडा कौतहल था । एसे ही काल म जब सद्गृहस्थ भी स या वपण म घर बार छोडकर भिक्षु या वनस्थ हो रह थे बद्ध का शाक्य व श मे ज म हुआ । इनका कुल क्षत्रिय गोत्र गौतम और नाम सिद्धाथ था । य राजा शुद्धोदन के पत्र थे और मायादेवी इनकी माता थी । उस समय पूव के प्रदेशो म क्षत्रियो का प्राधा य था । सिद्धाथ ने राजकुमारो की भाँति शिक्षा प्राप्त की परन्तु वे बचपन से ही विचारशील थे और इसीलिए उनकी उत्सुकता जीवन के रहस्यो को जानन के लिए बढने लगी । सासारिक सुखो से ये जल्दी ही विरक्त हो गय और युवावस्था म ही परमाथ सत्य की खोज म एक दिन घर से निष्क्रमण किया तथा काषाय वस्त्र धारण कर भिक्षभाव ग्रहण कर लिया । उस समय तापसो की बडी प्रसिद्धि थी । न्ह मालम हुआ कि आलार कालाम नि श्रेयस का ज्ञान रखत है । सिद्धाथ उनके पास गय और पूछा कि ज म मरण याधि आदि दुखों से जीव कैसे मुक्त होता है ? आलार कालाम ने सक्षप में अपन शास्त्र के निश्चय को समझाया । उन्होंने ससार की उत्पत्ति और प्रलय को समझाया और तत्त्वों की शिक्षा देकर नैष्ठिक पद की प्राप्ति का उपाय बताया । किन्तु सिद्धाथ को सन्तोष न हुआ । विशेष जानने के लिए वे उद्दक राम पुत्त के आश्रम में गये किन्तु जब उनसे भी स तोष नहीं हुआ तो व अनुत्तर शान्ति-पद की गवेषणा में उरुवेला आये और नैरंजना नदी के तट पर आवास किया । उन्होने विचार किया कि मुझमें भी श्रद्धा

---

१ सामञ्ञफलसुत्त दीघनिकाय प्रथम भाग प ४५–५२ ।

है वीर्य है स्मृति समाधि और प्रज्ञा है मैं स्वय धर्म का साक्षात्कार करूँगा। सिद्धार्थ बोधि के लिए कृतसंकल्प हो अस्वत्थ-मूल में पर्यंकबद्ध हुए और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक वे कृतकृत्य नहीं होते इसी आसन में बैठे रहेंगे। इस प्रकार रात्रि के प्रथम याम में उनको पूवज मों का ज्ञान हुआ दूसरे याम में दिव्य चक्षु की प्राप्ति हुई और अन्तिम याम मे द्वादशाग प्रतीत्यसमुत्पाद का साक्षात्कार कर उन्हें अनभव हुआ कि उनका बार बार जन्म लेना समाप्त हो गया ब्रह्मचयवास पूरा हो गया और यह उनका अन्तिम ज म है। आस्रवों का क्षय हो जाने से अब उन्हें इस लोक में पुन नहीं आना है। यह उनका बद्धत्व है। उस दिन से व बद्ध कहलाने लग। ज्ञान प्राप्ति के अवसर पर भगवान ने जो प्रीतिवचन कहे उनका वणन धम्मपद में इस प्रकार है— बिना रुके अनेक ज मों तक ससार में दौडता रहा। (इस कायारूपी) गृह को बनानेवाले (=तृष्णा) को खोजत पुन पुन दु खमय ज म में पडता रहा। हे गृहकारक (तृष्ण) मने तुझे देख लिया अब फिर त घर नही बना सकेगा। तेरी सभी कडियाँ भग्न हो गयी गृह का शिखर गिर गया। चित्त सस्काररहित हो गया। अहत्व (तृष्णा-क्षय) प्राप्त हो गया।

उपयक्त त्रैविद्यता ही बद्ध की सम्बोधि थी परन्तु कालान्तर में बुद्धपद के विकास से त्रैविद्यता के आधार पर ही बद्ध के अ य अनेक विशिष्ट गुणो—बल वैशारद्य आदि और सवज्ञता—की क पना की गयी। प्रारम्भ में बद्ध अपने और अन्य अहतों में भेद नही मानते थे। परन्तु बद्ध पद विशिष्ट हो जाने की स्थिति में अत्यन्त विरल माना गया अत बद्ध और सामान्य अहत् की उपलब्धि में भेद किया गया। इसी क्रम म तीन प्रकार के मुक्त पदों की क पना की गयी अहत प्रत्येक बद्ध और सम्यक सम्बद्ध। बद्ध के अतिरिक्त और उनसे पूव के आय मानुषी बद्धों की कल्पना भी विकसित हुई। बद्ध शब्द का प्रयोग पालि निकायों में अनेक बार हुआ है। दीघनिकाय के महापदानसुत्त और मज्झिमनिकाय के अच्छरियब्भुतधम्म-सुत्त (३।३।३) जैसे अनेक सुत्तों म इस प्रकार के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन पालि-साहित्य में सात बद्धों के नाम मिलते हैं यथा—विपस्सी सिखी वेस्सभ ककुसन्ध कोणागमन

---

१ अनेक जाति ससार सधाविस्स अनिब्बिस
गहकारकं गवे सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुन।
गहकारक दिट्ठोसि पुनगेह न काहसि।
सब्बाते फासुकाभग्गा गहकट विसङ्खित।
विसङ्खारगत चित्त तण्हान खयमज्झगा॥

धम्मपद १५३ १५४ तथा दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७३।

कश्यप और गौतम। खुद्दकनिकाय के अन्तगत बुद्ध-वश मे शाक्य मुनि के पर्व चौबीस बद्धों का वणन है। नये नाम इस प्रकार हं—दीपकर को डन्ज मगल सुमन रेवत सोभित अनोमदस्सी पदुमनारद पदुमुत्तर समेघ सुजात पियदस्सी अत्थदस्सी धम्मदस्सी सिद्धत्थ तिस्स और फुस्स। अगुत्तरनिकाय म बद्ध के तथागत बुद्ध और प्रत्यक बद्ध ये दो प्रकार बतलाये गये हैं। दीघनिकाय म तथागत बद्ध को सम्यक सम्बद्ध कहा गया ह। उत्तरकालीन परिभाषाओ के अनुसार सम्यक सम्बद्ध वह व्यक्ति है जिसन करुणा से प्रेरित होकर जगत के सारे प्राणियो को दु ख से मुक्त करन का भार अपने कन्धो पर लिया ह। स्वय बद्ध हुए दूसरे लोगो का जो अनेक प्रकार की रुचि शक्ति और योग्यतावाले लोग है उपकार करना सम्भव नही है अत वह बद्धत्व प्राप्त करने के लिए पुण्य-सम्भार और ज्ञान-सम्भार का अर्जन करता है। इसके लिए वह तीन असख्यय क पपर्यन्त अनक योनियो म ज म लेकर छह पारमिताओ को पूण करता ह यथा—दान पारमिता शील पारमिता क्षान्ति पारमिता वीय पारमिता यान पारमिता एव प्रज्ञा पारमिता। प्रज्ञा पारमिता को छोडकर शेष पाँच पारमिताय पु य सम्भार तथा प्रज्ञा पारमिता ज्ञान-सम्भार कहलाती हैं। जिस दिन उसन द्धत्व प्राप्त करने का सकल्प लिया था और अनन्त ज मो के बाद जिस दिन उसे बोधि प्राप्त होती है इसके बीच उसकी सज्ञा बोधिसत्त्व होती ह। जिस दिन उसे सम्यक सम्बोधि का लाभ होता है उस दिन प्रज्ञा पारमिता भी पण हो जाती है और उस दिन से वह सम्यक सबद्ध कहलान लगता ह। वह करुणा और प्रज्ञा का पज हाता ह। दोनो उसमें समरस होकर स्थित होती ह और वह करुणामय अन त ज्ञानवान सवज्ञ और अन त लाकोत्तर शक्तियो से समन्वित हो जाता ह। वह सभी प्राणियो को दु ख से मुक्त करन के माग को देशना करता ह। भगवान बद्ध इसी तरह के सम्यक सम्बद्ध थे।

प्रत्यक बद्ध वह व्यक्ति है जो अपन को दु ख से मुक्त करन का सकल्प लेकर और इसके लिए प्रव्रजित होकर शील समाधि आर प्रज्ञा भावना के द्वारा अर्थात आय अष्टाङ्गिक माग के अभ्यास द्वारा चार आयसत्यो का साक्षात्कार कर अपने

---

१ दीघनिकाय महापदानसुत्त।

२ बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ ३५६।

३ अगुत्तरनिकाय २।६।५ तथा डिक्शनरी आफ पालि प्रापर नेम्स भाग २ प २९४।

४ दीघनिकाय (सामञ्ञफलसुत्त १।५)।

५ वही दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ११ ।

क्लेशों का प्रहाण करता है। यह पुण्य-सम्भार का अर्जन अधिक नहीं करता। इसकी विशेषता यह होती है कि जिस जन्म में उसे प्रत्येक बद्ध बोधि प्राप्त होती है उस जन्म म वह किसीको अपना शास्ता मार्ग प्रदशक अथवा गुरु नहीं बनाता अपितु अपने बल पर निर्वाण प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध टीकाओं में चार प्रकार के बद्ध बतलाय गये हैं —

१ सब्बन्न बद्ध (सर्वज्ञ बद्ध)
२ पच्चेक बुद्ध (प्रत्येक बुद्ध)
३ चतु सच्च बद्ध (चतु सत्य बद्ध) और
४ सुत बद्ध (श्रत-बद्ध)।

धम्मपद के चौदहव बद्ध वर्ग म बद्ध के प्रकारों का उल्लेख तो नहीं मिलता है लेकिन बद्ध विनायक सम्बुद्ध श्रावक तथा गौतम श्रावक आदि विशेषणों से उसे अलकृत किया गया है जिसके विजय का फिर पराजय नहीं होता है जिसके विजय का कोई भागीदार इस ससार में नहीं हो सकता ऐसे अगम्य त्रिकालज्ञ बद्ध को आप कौनसा पथ दिखला सकते हैं। जो प्रबुद्ध और अप्रमत्त हैं जो ध्यान म मग्न रहनेवाले हैं जो धीमान और एकान्त सुख मे आनन्द मनाते हैं ऐसे सत्पुरुषों के साथ देवता भी स्पर्धा करत हं। क्योंकि बद्ध का जन्म तथा बद्धत्व प्राप्ति दुलभ ह इसलिए कोई पाप न किया जाव भलाई की जाय और अपने मन की शुद्धि की जाय यह उपदेश सब बद्धो का ह। निन्दा न करना घात न करना भिक्ष नियमो द्वारा अपने को सुरक्षित रखना परिमाण जानकर भोजन करना एकान्त में सोना-बैठना चित्त को योग म लगाना यही बद्धो का शासन ह।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी चार प्रत्येक बद्धों का उल्लेख मिलता है यथा—
(१) करकण्डु (कलिंग का राजा)
(२) द्विमुख (पचाल का राजा)

१ डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स मलालशेखर भाग २ पृ २९४ तथा उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन आचाय तुलसी पृ ३५।
२ धम्मपद १८७ ५८ ५९।
३ वही २९६–३ १ तक।
४ वही १७९ १८।
५ वही १८१।
६ वही १८२ १८३।
७ वही १८५।

(३) नमि (विदेह का राजा) और
(४) नग्गति (गधार का राजा)।

इसका विस्तृत वणन टीका म प्राप्त ह । य चारो प्रत्येक बुद्ध एक साथ एक ही समय में देवलोक से च्युत हुए एक साथ प्रव्रजित हुए एक ही समय मे बुद्ध हुए एक ही समय में केवली बने और एक साथ सिद्ध हुए । इनम से करकण्डु बढ़े बल को देखकर प्रतिबुद्ध हुआ । द्विमुख को इन्द्रस्तम्भ क देखने से वरा य हुआ तथा नमि राजा ने चडियो के शब्दो को सुनकर ससार का परित्याग कर दिया और नग्गति राजा मजरीविहीन आम्रवृक्ष को देखकर वैराग्यवश दीक्षित हो गए ।

उत्तराध्ययन की कथाओ के आधार पर करकण्ड और द्विमुख का अस्तित्व भगवान महावीर के शासनकाल म सिद्ध होता ह । उसके दो मुख्य आधार हैं (१) करकण्डु पद्मावती का पुत्र था । वह चटक राजा की पुत्री और दधिवाहन की पत्नी थी । य दोनों भगवान् महावीर के समसामयिक थे । (२) द्विमुख की पुत्री मदन मञ्जरी का विवाह उज्जनी के राजा चण्ड प्रद्योत के साथ हुआ था । यह भी भगवान महावीर के समसामयिक थे । चारो प्र यक बुद्ध एक साथ हुए थ इसलिए उन चारो का अस्तित्व भगवान महावीर के समय मे ही सिद्ध होता है ।

अर्हत्

अहन शब्द श्रमण-सस्कृति का प्रिय शब्द ह । श्रमण लोग अपने तीर्थङ्करों या वीतराग आत्माओ को अर्हन् कहत थ । बौद्ध और जैन-साहित्य म अहन शब्द का प्रयोग हजारो बार हुआ है । जैन लोग आहत नाम से भी प्रसिद्ध रह हैं । भगवान् महावीर और बुद्ध समकालीन थे और स्वाभाविक रूप से दोनों की वाणी और भाव म बहुत अधिक साम्य है । बहुत से शब्द और भाव तो दोनो धर्मों के ग्रन्थो म समान रूप से देखकर लोग आश्चयचकित हो जाते हैं । भगवान बुद्ध और उनके शिष्यो के लिए भी अरहत विशेषण बौद्ध-ग्रन्थो म पाया जाता ह जो कि एक विशिष्ट अवस्था या उपलब्धि का सूचक है । अहत् अघ का विकृत रूप है । अघ ऋग्वेद म भी आया है । वहाँ

---

१ करकण्ड कलिंगेसु पचाले सुय दुम्मुहो ।
नमी राया विदेहेसुगन्धारेसुयनग्गई ।। उत्तराध्ययनसूत्र १८।४६ ।

२ उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा २७ ।

३ सुखबोधापत्र १३३ ।

४ वही १३३–१३५ ।

५ वही पत्र १३६ ।

६ ऋग्वेद २।३।१ २।३।३ ।

इसका अर्थ है---योग्य उत्तम श्रद्धास्पद इत्यादि। इस प्रकार ऋग्वेद के समय में भी इस शब्द से एक उच्चादर्श सूचित होता था। बाद म जैनधम ने इस वैदिक शब्द को अपना लिया और अपुरुष रत्नों के सम्बन्ध म इसे प्रयुक्त किया क्योकि इस शब्द से आदर्श में निहित पूरा-पूरा भाव प्रकट होता था। इस प्रकार अहत जैन तीथङ्करो के लिए प्रयुक्त होने लगा और इसके द्वारा जैनधम के सवश्रेष्ठ आदश पुरुष का बोध होने लगा। बारहवीं शताब्दी के जैन कोषकार हेमच द्र ने जैन तीथङ्करो के पर्य्यायवाची शब्दों का वर्णन किया है। उन्होने बुद्ध के भी पर्यायवाची शब्द दिये हैं। यह सूची तीथङ्कर के पर्य्यायवाली सूची से बहुत ल बी है पर इसम अर्हत् शब्द का पता नही है। बौद्ध कोषकार अमरसिंह (छठी शताब्दी) ने भी अपने अमरकोष में बुद्ध के पर्य्यायवाची शब्द देते हुए अहत् का कोई उ लेख नही किया है। किन्तु हेमचन्द्र और अमरसिंह दोनो ने ही बुद्ध के नामो म जिन शब्द का उल्लेख किया ह। जिन और अहत् से श्रेष्ठ तथा आदश पुरुष का बोध होता है अत ये जनो तथा बौद्धो दोनो के आदर्श परुषो के सम्बन्ध म लागू हो सकते हैं। पर यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि जैना और आर्हता से जैनधर्मानुयायियो का बोध होता है और इस प्रकार जिन और अर्हत भी जैन आदश पुरुषों के लिए विशेषत प्रयुक्त हुआ है। जिन शब्द जि धातु से बना है जिसका अथ होता है जीतने वाला। किसे जीतनेवाला यह यहाँ गुप्त एव अध्याहृत है। भगवान महावीर को अन्तिम देशना के रूप म माने जानेवाले प्रसिद्ध शास्त्र उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जो दुजय सग्राम म सहस्र सहस्र योद्धाओ—शत्रुओ को जीत लेता है वह वास्तविक विजता नही माना जाता। वास्तव म एक आत्मा को जीतना ही परम जय है। इसलिए ह पुरुष! त आत्मा के साथ ही युद्ध कर बाह्य शत्रुओ के साथ युद्ध करन से तुझे क्या लाभ है? जो आत्मा द्वारा आत्मा को जीतता है वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।

---

१ अहज्जिन पारगतास्त्रेकाल वित्क्षीणा
 ष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वर।
 शुभः स्वय भूभगवाञ्जगत्प्रभुस्तीथ
 करस्तीर्थकरो जिनेश्वर॥

अभिधान चिन्तामणि १।२४ २५।

२ उत्तराध्ययन ९।३४ ३५ तुलनीय—
 यो सहस्स सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
 एकं च जेय्यमत्तान स वे सङ्गामजुत्तमो॥

धम्मपद १ ४।

इन उदगारो से यह निश्चित हो जाता है कि यहाँ बाह्य शत्रुओं के साथ लडकर उन्हें जीतने की बात नही अपितु आन्तरिक शत्रुओ के साथ जझकर उन्हें जीतने की बात कही गयी है। यह युद्ध कैसे करना चाहिए यह भा यहाँ बता दिया गया है अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा को जीतना चाहिए। इसका अथ हुआ अपना आत्मबल सकल्पशक्ति और वीर्योल्लास बढाकर अन्त करण म स्थित महान शत्रुओ पर नियन्त्रण करना। जैनधम के अनुसार अन्त करण के प्रबल शत्रु हैं—राग द्वेष और मोह। इन्हीके कारण क्रोध मान माया लोभ काम तष्णा आदि दुष्ट वत्तियाँ उत्पन्न होती ह और उ हीके कारण कमबन्धन होता है जिसके फलस्वरूप नाना गतियो और योनियो म परिभ्रमण करना और ज म मरणादि दु ख सहना होता है। वैसे देखा जाय तो दुष्कृत्यो या दर्वृत्तियो म प्रवृत्त आत्मा (मन आदि इद्रियसमह) भी आ मा का शत्रु बन जाता है। इस प्रकार आन्तरिक शत्रुओं की गणना अनेक प्रकार से होती है। तात्पय यह है कि जो इन आ तरिक शत्रुओ को जीत लेत हैं वे जिन कहलाते हैं।

सम्भवत बौद्धों न जनो से ही इन दोनो शब्दो को ग्रहण किया। अहत एक अवस्था या पदविशेष है। उस अवस्था को बुद्ध न ही नहीं अपितु उनके अनेक शिष्यो और शिष्याओ न भी समय-समय पर प्राप्त किया जिसके अनेक उदाहरण हैं। बौद्ध और जनधम दोनो द्वारा अहत श द के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए प बेचरदास दोशी ने लिखा ह कि धम्मपद के प्रारम्भ म ही बुद्ध भगवान का विशेषण अरहत बतलाते हुए नमस्कार किया गया है यथा—नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। यह उसी प्रकार ह जैसे जन ग्रन्थों में नमो अरिहताण। किन्तु यह ध्यान मे रखना चाहिए कि बौद्ध प्रयोग म अरहत षष्ठी विभक्ति म ह और विशेषण के समान व्यवहृत है। अत वह श्रद्धय या आदरणीय के अथ म ही प्रयुक्त प्रतीत होता है। वहाँ अहत से वह अथ नही निकलता जो नमो अरिहताण के अरिहताण से निकलता है।

धम्मपद के सातव वग्ग का नाम अह न्तवग्ग है। इस वग्ग म अहतो के सम्बन्ध म विचार किया गया है। इस वग्ग की प्रत्येक गाथा म जैन अहतो या

---

१ अप्पामित्तममित्त च दुप्पटिठय सुपटिठओ ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २ ।३७।
तुलनीय—

अत्तना वकत पाप अत्तना सकिलिस्सति।
अत्तना अकत पाप अत्तना व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्त नाञ्ञो अञ्ञ विसोधये ॥ धम्मपद १६५ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलना मक अध्ययन भाग १ प ३६३।

२ महावीर-वाणी पृ ४।

तीथकरों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा की गयी है। अहत् शब्द का ऐसा ही प्रयोग धम्मपद की १६४वी गाथा में किया गया है—

यो सासन अरहत अरियान धम्मजीविन ।

धम्मपद के टीकाकार आचाय बुद्धघोष ने यहाँ अरहत को विशेषण और सासन को विशेष्य बताया है और यही ठीक भी है। इस प्रकार यहाँ अरहत का अथ सम्मानास्पद समझना चाहिए। अब यह विचार करना चाहिए कि बौद्धो के अनुसार अर्हत का क्या अथ है ? खुद्दकपाठ म इसका अथ इस प्रकार दिया हुआ है— दसह गहि समन्नागतो अरहाति वुज्जति —अर्थात जिसम दस लक्षण वतमान हो वह अहत है। इससे बोध होता ह कि बौद्धो की दृष्टि म अहत् का बहुत ऊचा किन्तु एक निश्चित स्थान था और एसा जान पडता है कि वह स्थान केवल बद्धत्व के नीचे था। अत मालम पडता है कि बौद्धधम म अर्हत्व की भावना किसी दूसरे सम्प्रदाय से ग्रहण की गयी है और वह सम्प्रदाय निस्सन्देह जन सम्प्रदाय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नतिक जीवन का आदश अहतावस्था माना गया है। अहत-अवस्था से तात्पय तृष्णा या राग द्वेष की वृत्तियों का पूण क्षय है। जो राग द्वष और मोह से ऊपर उठ चका ह जिसमें किसी भी प्रकार की तृष्णा नही ह जो सुख दु ख लाभ अलाभ और नि दा प्रशसा मे समभाव रखता है वही अहत है। इसके अतिरिक्त अर्हत को स्थितात्मा केवली उपशान्त आदि नियमो से भी जाना जाता ह। धम्मपद म अहत के जीवनादर्श का निम्न विवरण इस प्रकार ह जिसने अपनी यात्रा को समाप्त कर लिया है जिसन चिन्ताओ को "याग दिया है जिसने सब तरह से अपने आपको स्वाधीन कर लिया है और सब बन्धनो को काट दिया है वह कष्टो से परे है। उनको घर मे सुख मालम नही होता वे भली प्रकार विचार कर घर को याग देते है जैसे राजहस अपने घरबार अर्थात् झील को त्याग देत हैं। वे पुरुष जिनके पास धन नही है जो खास किस्म का भोजन करते हैं जिन्होने पण स्वाधीनता पद निर्वाण को प्राप्त कर लिया है उनका माग आकाश म विचरनेवाले पक्षियो के माग की तरह समझना कठिन है। इस प्रकार के कतव्यपरायण पुरुष भमि तथा इन्द्रवज्र की तरह सहनशील हो जाता है वह कीच से रहित सरोवर की तरह है वह पुनजन्म की प्रतीक्षा नही करता। उसके विचार स्थिर हो जात हैं और कर्म क्षोभरहित हो जाते हैं तब वह मौनी कहलाता है। जो असृष्ट वस्तु को पहचानता है

---

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ डॉ सागरमल जन प ४१७।

२ धम्मपद अरहन्तवग्ग ९ –९९।

जिसने सब बन्धनों को तोड दिया है और सब इच्छाओ को त्याग दिया है वही श्रेष्ठ मनुष्य है। ऐसा मनुष्य जहाँ कही भी विहार करता है वह भूमि (पवित्र) है।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर द्वारा लिखित बौद्धचर्या-पद्धति म शब्द के विषय म निम्नलिखित टिप्पणी प्राप्त होती है अर्हत-जीवन्मुक्त। अर्हत तीन प्रकार के होते हैं—बुद्ध प्रत्येक बुद्ध और श्रावक अर्हत्। इनम जो पुरुष बिना गुरु की सहायता के स्वय अपने प्रतिभा बल से सवज्ञता या पूर्णज्ञान प्राप्त करके निर्वाण लाभ करते हैं वे बुद्ध प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं। और जो पुरुष बुद्ध प्रदर्शित पथ पर चलकर सवज्ञता और निर्वाण लाभ करते हैं वे श्रावक अर्हत् कहलाते हैं। बुद्ध और प्रत्येक बुद्ध म यह अन्तर है कि कम ऋषि ज्ञान ऋषि आदि सब प्रकार की अलौकिक प्रतिभा तथा जिसम असख्येय अप्रमेय प्राणियो के उदबोधन करने की प्रतिभा है वे बुद्ध कहलाते है और जो अपने प्रतिभा बल से अन्य प्राणियो का उदबोधन नहीं कर सकते केवल स्वय निर्वाण लाभ कर सकते हैं वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते है। बुद्ध जैनो म भी प्रसिद्ध हैं।

श्रावक की निर्वाण प्राप्ति के लिए चार अवस्थाओ का विधान दिया गया

१ स्रोतापन्न

स्रोतापन्न शब्द का अर्थ है धारा म पडनेवाला। जब साधक का चित्त प्र... एकदम हटकर निर्वाण के माग पर आरूढ हो जाता है जहाँ से गिरने की स... नही रहती तब उसे स्रोतापन्न कहते है। जैसे किसी तीव्र जलधारा म पडा (तिनका) अवश्य एक दिन समुद्र तक पहुच जाता है उसी प्रकार स्रोतापन्न भी अधिक-से-अधिक सात जन्मो म अवश्य सम्पूर्ण क्लेशो का प्रहाण करने म स... जाता है। उसका आठवाँ जन्म नही होता। वह मनुष्य देव आदि उच्च भू... उत्पन्न होकर एक-दो जन्म में भी अर्हत् हो सकता है किन्तु किसी भी हालत ... से अधिक जन्म नही लेता।

२ सकृदागामी

स्रोतापन्न हो जाने के बाद आगे मार्गाभ्यास करने पर व्यक्ति ... (कामराग) द्वेष (प्रतिघ) एव मोह (अविद्या) इन तीन सयोजनों को ...

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र १८।४६।

२ खुद्दकनिकाय सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप (खुद्दकपाठ—रतनसुत्त)

३ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १३३ १९५ द्वितीय भाग पृ ७१ ... भाग पृ ८४ १ २।

देता है तो सकृदागामी कहलाने लगता है। ऐसा यक्ति इस कामभमि मे अधिक से अधिक एक बार (सकृ) ज म लेकर अपने सम्पूण दु ख का प्रहाण कर देता है।

३ अनागामी

इसे अनागामी इसलिए कहत ह क्योकि ऐसे व्यक्ति का इस मनुष्य भमि (कामभमि) म फिर उत्पाद नही होता। कामभूमि म पुन आनेवाला न होन से यह अनागामी कहलाता ह। रूप अरूपभमि म उत्प न होकर यह अपने दु ख का अन्त कर देता है।

४ अहत्

उपयक्त तानो व्यक्ति जिन क्लेशों का प्रहाण करन म असमथ रहते ह यह यक्ति बाकी के बच हुए ऊर्ध्वभागीय पाँच क्लेशो का भी प्रहाण कर अहत कहलाने लगता ह। अर्थात इसके सम्पण दस सयोजन (कामराग रूपराग अरूपराग प्रतिघ मान दष्टि शीलव्रत परामश विचिकि सा औद्धत्य एव अविद्या) सर्वथा प्रहीण हो चके हैं। इसे अब कुछ प्रहाण करना शष नही ह। इसे जो करना था वह कर दिया जा पाना था वह पा लिया। यह कृतकृ य एव पण मनोरथ हो गया है। इसका ब्रह्म चय वास पण हो गया इसे अब फिर जन्म ग्रहण नही करना है। यह इसी ज म म अनास्रव चित्त विमुक्ति एव प्रज्ञा विमुक्ति का अनुभव करत हुए विहार करता है।

जन-दशन मे नतिक जीवन का परमसाध्य वीतरागता की प्राप्ति रहा है। जन दशन म वीतराग एव अरिह त इसी जीवनादश के प्रतीक हैं। वीतराग की जीवन-शैली क्या होती ह इसका वणन जनागमो म यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। डा सागरमल जन न उसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया है जो ममत्व एव अहकार से रहित ह जिसके चित्त में कोई आसक्ति नही है और जिसने अभिमान का त्याग कर दिया ह जो प्राणिमात्र के प्रति समभाव रखता ह जो लाभ-अलाभ सुख-दु ख जीवन मरण मान अपमान और निन्दा प्रशसा में समभाव रखता है जिसे न इस लोक और परलोक की कोई अपेक्षा नही है किसीके द्वारा चन्दन का लेप करन पर और किसीके द्वारा बसूले से छिलने पर जिसके मन में राग द्वेष नहीं

१ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १३३ १९५ द्वितीय भाग पृ ७४ तृतीय भाग पृ ८३ १ २।

२ वही पृ ८३ ८४ १ ३।

३ वही पृ ८३ ८४।

४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४१६ ४१७।

होता जो खान म और अनशन व्रत करने म समभाव रखता है वही महापुरुष है। जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निमल होता है उसी प्रकार राग द्वेष और भय आदि से रहित वह निमल हो जाता है। जिस प्रकार कमल कीचड एव पानी म उत्पन्न होकर भी उसम लिप्त नहीं होता उसी प्रकार जो ससार के कामभोगों में लिप्त नही होता भाव से सदव ही विरत रहता है उस विरतात्मा अनासक्त पुरुष को इन्द्रियो के शब्दादि विषय भी मन म राग द्वेष के भाव उत्पन्न नही करते। जो विषयरागी व्यक्तियों को दु ख देते हैं वे वीतरागी के लिए दु ख के कारण नही होत ह। वह राग द्वष और मोह के अध्यवसायो को दाषरूप जानकर सदव उनके प्रति जागृत रहता हुआ माध्यस्थ भाव रखता ह। किसी प्रकार के सकल्प विकल्प नही करता हुआ तृष्णा का प्रहाण कर देता है। वीतराग पुरुष राग द्वष और मोह का प्रहाण कर ज्ञानावरणीय दशनावरणीय और अन्तराय कम का क्षय कर कृतकृत्य हो जाता हैं। इस प्रकार मोह अन्तराय और आस्रवो मे रहित वातराग सवज्ञ सवदर्शी होता है। वह शुक्ल ध्यान और सुसमाधि होता ह और आयु का क्षय होन पर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

धम्मपद और उत्तराध्ययन के अहत पद-सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि बौद्धधम की तरह ही जैनधर्म म भी अहत्-पद को बहुत महत्त्व दिया गया ह। जनधम का महान ध्यय ही वीतरागता की प्राप्ति ह। दोनो ग्रन्थो में अहत शब्द जीवन्मक्त के लिए प्रयुक्त है। जिसका चित्त मन सवथा प्रक्षीण हो चुका है वीततृष्ण हो जाने के कारण उसके कम दग्धबीज की तरह विपाक (फल) उत्पन्न नही करत। शरीर त्याग के बाद फिर जन्म ग्रहण नही करता आवागमन मुक्त हो जाता है। राग द्वेष और मोह सब नष्ट हो जाता ह तब अहत-पद प्राप्त होता ह। वह पवसिद्ध कृतकृत्य हो जाता ह। अत सभी के लिए पूज्य बन जाता है।

त्रि शरण

बुद्ध धम और सघ बौद्धधम के तीन रत्न मान गय ह। आचार्य वसुबन्धु ने

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र १९।९ –९३।

२ वही २५।२१ २७ ३२।४७ ३५।

३ वही ३२।६१ ८७ १ ।

४ वही ३२।१ ८।

५ वही १९।९४ ३५।१९२ २३।७५–७८

६ खुद्दकपाठ धमसग्रह (नागाजुनकृत मक्समलर द्वारा सम्पादित आक्सफोर्ड १८८५) पृ १।

अभिधमकोश भाष्य म इन तीन रत्नों की तुलना क्रमश वैद्य भेषज्य एव उपस्थापक से की है। इनका स्मरण स्वस्तिकारक है। अत नम रत्नत्रयाय कहकर इन्हें अक्सर नमस्कार भी किया जाता है। इससे भय दु ख आदि दूर होते है। त्रिशरण-गमन बौद्ध सघ में प्रवेश की प्रथम औपचारिक आवश्यकता थी। प्रव्रज्या के प्रार्थी को सिर और दाढी मडाकर काषाय वस्त्र पहनकर उत्तरासग एक कन्ध म बठकर और हाथ जोडकर तीन बार यह कहना पडता था बुद्ध की शरण जाता हूँ धम्म की शरण जाता हूँ और सघ की शरण जाता हूँ।

अब प्रश्न उठता है कि शरण का क्या अथ हो सकता है? शरण का अथ दढ निष्ठा एव तदनुसार आचरण करना ह। भगवान बुद्ध न पूजा-पाठ का निषध किया था। उन्होन अपनी पजा तक को साथक न कहकर धम आचरण की ओर सबको प्ररित किया था। उन्होन यह भी कहा था कि मनुष्य भय के मार पर्वत वन उद्यान वृक्ष चत्य आदि को देवता मानकर उनकी शरण म जाते ह। किन्तु य शरण मगलदायक नही य शरण उत्तम नही क्योकि इन शरणो मे जाकर सब दु खो से छटकारा नही मिलता। जो बुद्ध धम और सघ की शरण जाता ह और चार आय सत्यो की भावना करता है वही सब दु खो से मक्त होता ह।

---

१ अभिधमकोश भाष्य पृ ३८७।

२ देखिय रतनसुत्त (सुत्तनिपात)।

३ विनयपिटक महावग्ग प २४ और बौद्धधम के विकास का इतिहास प १४।

४ महापरिनिब्बानसुत्त प १४४।

५ बहु वे सरण यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आराम रुक्खचेत्यानि मनुस्साभय तज्जिता॥
नेत खो सरण खेमं नेत सरणमत्तम।
नेत सरणमागम्म सब्ब दक्खा पमच्चति॥

धम्मपद १८८ १८९।

६ यो च बुद्ध च धम्म च सघ च सरण गतो।

एत खो सरण खेम एत सरणमुत्तम।
एत सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

वही १९ -१९२।

जिनमें कर्म और क्लेश आश्रय ग्रहण करते हैं वे उपधि है। जो उपधि भी हैं और शेष भी रहते है वे उपधिशेष कहलाते हैं। वस्तुत अर्हत् व्यक्ति के पाँच स्कन्ध ही उपधिशेष ह। निर्वाण का लाभ हो जाने क्लेशो का क्षय हो जाने तथा क्लेशवश नवीन कर्मों का सम्पादन न करन पर भी पुराने कर्मों के विपाक (फल) के रूप मे उनकी स्थिति तब तक बनी रहती ह या उनकी धारा का प्रवाह तब तक चलता रहता है जब तक आयु का क्षय नही होता यही सोपाधिशेष अवस्था है।

जब अर्हत व्यक्ति का आयु क्षय से मरण हो जाता ह तब उसके सभी प्रकार के नाम धर्मों की सन्तति तथा रूप धर्मों की सन्तति सवदा के लिए सवथा निरुद्ध हो जाती है। उसके पाँचो स्कन्धो का निरोध हो जाता ह। जिस अवस्था म उपधिशेष कहलानेवाले पाँच स्कन्धो का भी अभाव हो जाता है वह निर्वाण धातु अनुपधिशेष निर्वाण कहलाती ह।

जन-परम्परा में भी मुक्ति के इन दो रूपो की कल्पना है वहाँ वे भाव मोक्ष और द्रव्य मोक्ष कही गयी ह। भाव मोक्ष की अवस्था के प्रतीक अरिहत और द्रव्य मोक्ष की अवस्था क प्रतीक सिद्ध मान गये ह। उत्तराध्ययनसूत्र म मोक्ष और निर्वाण शब्दो का दो भिन्न भिन्न अर्थों म प्रयोग हुआ ह। उनमें मोक्ष को कारण और निर्वाण को उसका कार्य बताया गया है। इस सदभ म मोक्ष का अथ भाव मोक्ष या राग-द्वेष से मुक्ति है और द्रव्य मोक्ष का अथ निर्वाण या मरणोत्तर मुक्ति की प्राप्ति है।

निर्वाण के विशेषण

यद्यपि धमपद आदि बुद्ध वचनो में निर्वाण के स्वरूप अथवा आकार का स्पष्ट विवचन उपलब्ध नही होता फिर भी उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उपलब्ध होते ह जिनसे निर्वाण के स्वरूप का आकलन करने मे बडी सुविधा होती है जैसे—अमृत अजर अमर अरूप नित्य असाधारण निष्प्रपच अच्युत अत्यन्त असस्कृत लोकोत्तर निर्वाण आदि।

हेतु प्रत्ययों से उत्पन्न होने के कारण निर्वाण अमृत असंस्कृत अजर एव अमर कहलाता है। जो उत्पन्न होता है उसका विनाश ध्रुव है। निर्वाण उत्पन्न नही होता

---

१ विसुद्धिमग्ग १६।७३ पृ ३५६।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ १२।

३ उत्तराध्ययन २८।३ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४१५।

केवल विशिष्ट मार्ग द्वारा प्राप्त होता है अत वह जरा-मरण धर्मवाला नहीं है इस लिए वह नित्य भी है। उसकी पूर्वकोटि भी नही है अत वह अनादि अन्तरहित एव अप्रभव है। रूप-स्वभाव का न होने से वह अरूप तथा सवप्रपचो से रहित होने के कारण निष्प्रपच कहलाता है। कल्पना शब्द तक का विषय न होने से अतर्क्य गम्भीर एव दुज्ञेय कहलाता है। तृष्णा से निर्गत होने के कारण उसे निर्वाण कहते हैं।

इस प्रकार विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्वाण परमार्थत स्वभावभूत एक धम है। न तो वह सांख्यो की प्रकृति या बौद्धेतर दार्शनिकों की आत्मा की भांति नित्य व्यापक एव सत्तावान् कोई द्रव्य है न ही शश विषाण की तरह वह सर्वथा अलीक है। न तो वह प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्मों की तरह सस्कृत धम है और न प्रज्ञप्तिमात्र है। वह एक परमार्थ धर्म है जिसका साक्षात्कार एव प्राप्ति होती है किन्तु उसका भाव या अभाव के रूप में निवचन नही किया जा सकता। अत उसे भावत्वेन एव अभावत्वेन अनिवचनीय ही कहा जा सकता है।

भगवान् बद्ध की सारी देशना का एकमात्र रस निर्वाण है। उनके धम का आदि और अन्त सब कुछ निर्वाण है। निर्वाण दु ख और उसके कारणो की निवृत्ति है। यह सवश्रेष्ठ अवस्था एव परमपद है। इसकी प्राप्ति के बाद कुछ प्राप्त करना शेष नही रहता। यह परम शान्ति है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर भी यदि व्यक्ति जीवित है तो वह सोपधिशेष निर्वाण या जीवमुक्त की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था म वह जो कुछ करता है वही पुण्य है वही कुशल है किन्तु इसका उसे फल नही भोगना पडता क्योंकि इन कर्मों के पीछे राग द्वेष मोह तृष्णा आदि कोई क्लेश नहीं होते। य कम निराभोग कम कहलाते हैं। इनके द्वारा केवल लोक-सग्रह

---

१ निब्बान योगक्खेम अनुत्तर। — धम्मपद २३।
पारमेस्सत्तिमच्चुधेय्य सुदुत्तर। — वही ८६।
नत्थिसन्ति परं सुख। — वही २ २।
निब्बान परम सुख। — वही २ ३ २ ४।
येयन्ति अच्चुत ठान यत्थ गन्त्वा न सोचते। — वही २२५।
सन्तिमग्गमेवब्रूहय निब्बान सुगतेन देसित। — वही २८५।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च से निब्बान सन्तिके। — वही ३७२।
तथा—
दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १२ द्वितीय भाग पृ ३२।
अभिधम्मत्थसगहो द्वितीय भाग पृ ७२८ तथा पृ ७२१।

था लोक-कल्याण होता है। भगवद्गीता में यही निष्काम कर्मयोग कहा गया व्यक्तित्व के विकास की इससे ऊची अवस्था नही होती। एसे व्यक्ति के लौकिक स्कन्ध जब निरुद्ध हो जाते हैं अर्थात् जब वह मर जाता है तो पुन उन स्कन्धों उत्पाद नहीं होता। एसे व्यक्ति के नाम और रूप धर्मों की धारा सवथा समा जाती है। इसे ही निरुपधिशेष निर्वाण की अवस्था कहत हैं।

जैन-दर्शन में मोक्ष का स्वरूप

जन-तत्त्व मीमासा के अनुसार सवर के द्वारा कर्मों के आगमन का निरो जाने पर और निजरा के द्वारा समस्त पुरातन कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्म जो निष्कम शुद्धावस्था होती है वही मोक्ष ह। मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपा ह। मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानन के कारण जैन आचार्यों ने मोक्ष मोक्ष माग दोनों पर विस्तार से विचार किया ह। उत्तराध्ययन भी अन्य भारतीय धा ग्रन्थो की तरह जीवो को मुक्ति की ओर अग्रसर करना अपना चरम लक्ष्य समझत

मोक्ष के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग जैन आचार्यों ने भी किया निर्वाण का शाब्दिक अथ है— नि शेषण वान गमन निर्वाणम अर्थात् सम्पूण ग गमन निर्वाण है। निर्वाण के बाद जीव का संसार म पुनरागमन नही होता। यहाँ पर निर्वाण का अथ है कमजन्य सासारिक अवस्थाओं का सदैव के लिए स हो जाना। बौद्ध-दशन का भी मूल लक्ष्य जीवों को मुक्ति की ओर ले जाना जैन मनीषियों ने मोक्ष के स्वरूप का प्रतिपादन करने के साथ अन्य भारतीय दश मान्य मोक्ष के स्वरूप की समीक्षा भी की है और तार्किक दृष्टि से उपयुक्त जैन-परि को प्रतिस्थापित किया ह। उत्तराध्ययनसूत्र म मक्ति के अथ को डॉ सुदशनलाल ने अपनी पुस्तक म विस्तृत रूप स प्रस्तुत किया है जिसे उसके स्वरूप के विष विशेष जानकारी प्राप्त होती ह। वे शब्द निम्नलिखित हैं

---

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भा पृ ४३१।

२ उत्तराध्ययन २३।७१–७३ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शन तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ४२ ।

३ नायए परिनिव्वुए — उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२

नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण — वही २८।३ ।

४ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३७५–३७८।

१ मोक्ष

मोक्ष शब्द की उत्पत्ति मुच धातु से हुई है जिसका अथ छटकारा प्राप्त करना होता है। अध्यात्म विषय होने से यहाँ पर ससार के बन्धनभत कर्मों से छटकारा जीव को होता है तथा कमबन्धन से रहित जीव को मुक्त जीव कहा गया है। अत मोक्ष का अर्थ हुआ सब प्रकार के ब न्धन से रहित जीव द्वारा स्वस्वरूप की प्राप्ति।

२ बहि विहार

यहाँ पर विहार शब्द का अर्थ है ज म-जरा-मरण से व्याप्त ससार। अत बहि विहार का अथ हुआ ससार के आवागमन से रहित स्थान या ज म। मरणरूप ससार से बाहर। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने के बाद जीव का ससार म आवागमन नही होता ह अत ग्र न्थ म उसे बहि विहार कहा गया है।

३ सिद्धलोक

ग्रन्थ म निर्वाण अ याबाध सिद्धि लोकाग्र क्षम जीव और अनाबाध इन नामो का उल्लेख मिलता ह परन्तु इस स्थान को पूण रूप से सयम का पालन करनेवाले महर्षि लोग ही प्राप्त करत हैं क्योकि यह स्थान सर्वोत्तम सर्वोच्च तथा सबके लिए क याणकारी है। इसम सर्वप्रकार के कषायो से विरत होकर परमशान्त-अवस्था को प्राप्त होने से इसको निर्वाण कहा गया ह। लोक के अग्र-अन्त भाग में होने से इसको लोकाग्र नाम से भी पुकारत हैं क्योकि यहाँ से लोक का प्रारम्भ भी होता है और यह लोक का प्रधान भाग होन से शीर्षस्थानापन्न भी है। मोक्ष को प्राप्त करनेवाला जीव सिद्ध बुद्ध एव मुक्त होकर अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सिद्धलोक को चला जाता है तथा वह सिद्धलोक सभी पापो के उपशमन होने से परमकल्याणरूप और सर्वोत्कृष्ट है।

---

१ बन्धमोक्खपइण्णिणो उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२६९।

२ बहिं विहाराभिनिविटठचित्ता। वही १४।४।

ससारपारनिच्छिन्न। वही ३६।६७।

३ अलोए पडिहया सिद्धालोयग्गेय पइटिठया। उत्तराध्ययन ३६।५६ तथा

निव्वाण ति अबाह ति सिद्धी लोगग्गमेव य।

खेम सिव अणाबाह ज चरन्ति महेसिणो॥ वही २३।८३।

अकलेवरसेणिमुस्सिया सिद्धिगो मलोयं गच्छसि।

खेम च सिव अणुत्तर वही १ ।३५।

४ आत्मवसति

मुक्त होने का अथ है आत्मस्वरूप की प्राप्ति। अत आ`मवसति या आ`म प्रयोजन की प्राप्ति का अथ है मोक्ष की प्राप्ति।

५ अनुत्तरगति प्रधानगति वरगति और सुगति

धम में सामा`य रूप से चार गतियाँ मानी गयी ह जो ससार भ्रमण में कारण हैं। परन्तु मोक्ष एसी गति है जिसे प्राप्त कर लेने पर पुन ससार म आवागमन नही होता है। इससे श्रेष्ठ कोई गति नही है। अत इसे अनुत्तरगति कहा गया ह। यद्यपि देव और मनुष्यगति को ग्र`थ म कही कही सुगति कहा गया है परन्तु वह ससारापेक्षा से कहा गया ह। वस्तुत सुगति मोक्ष ही ह। ससार की चार गतियों से भि`न होने के कारण यह पचमगति ह।

६ ऊर्ध्वदिशा

मुक्तात्माय स्वभाव से ऊध्वगमन स्वभाववाली हैं और जहाँ मुक्त जीव निवास करते ह वह स्थान लोक के ऊपरी भाग म ह। अत मोक्ष की प्राप्ति का अर्थ है ऊर्ध्व दिशा म गमन।

७ दुरारोह

निर्वाण प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होने से इसे दुरारोह कहा गया है। ग्रन्थ म कहा गया ह कि लोक के अग्रभाग म एक एसा स्थान ह जहाँ पर जरा और मृत्यु का अभाव है तथा किसी प्रकार की याधि और वेदना की भी वहाँ पर सत्ता नही एव वह स्थान ध्रुव निश्चल अर्थात शाश्वत ह परन्तु उस स्थान तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। तात्पय यह है कि उस स्थान पर पहुचने के लिए सम्यक दशन सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र ये तीन साधन हैं। इनके द्वारा ही वहाँ पर पहुँचा जा सकता है परन्तु इनका सम्यकतया सम्पादन करना भी बहुत कठिन है।

---

१ अप्पणो वसहि वए। — उत्तराध्ययन १४।४८ तथा
इह कामाणियट्टस्स अत्तट्ठे अवरज्झई। — वही ७।२५।

२ पत्तो गइमणुत्तर। — वही १८।३८ ३९ ४ ४२ ४३ ४८ आदि।
गइ प्पहाण च तिलोगविस्सुय। — वही १९।९७।
जीवा गच्छन्ति सोग्गइ — वही २८।३।
सिद्धि वरगइ गया। — वही ३६।६७।

३ उड्ढ पक्कमई दिस। — वही १९।८२।

४ वही २३।८१ ८३।

८ अपुनरावृत्त और शाश्वत

यहाँ आने के बाद जीव पुन कभी भी ससार में नही आता है। अत अपुनरावृत्त है तथा नित्य होने से शाश्वत भी है। तात्पय यह है कि मोक्ष दशा को प्राप्त हो जाने पर न तो कोई कम शेष रहता है और न किसी प्रकार के दु ख का उपभोग करना पड़ता है।

९ अव्याबाध

सब प्रकार की बाधाओ से रहित तथा अत्यन्त सुखरूप होने से निर्वाण को अव्याबाध भी कहा गया है। तात्पय यह है कि निजगुण का सुख एक अनुपम सुख होता ह और सातावदनीय कम के क्षयोपशम से जो सुख उत्पन्न होता है वह अनित्य सादि सान्त होता है परन्तु इसके विपरीत जो आध्यात्मिक सुख ह वह अजन्य होने से नित्य अथवा अन त पदवाला है।

१ लोकोत्तमोत्तम

तीनो लोकों मे सर्वश्रष्ठ होने से निर्वाण को लोकोत्तमोत्तम कहा गया है। मोक्षस्थान म प्राप्त हुआ जीव फिर इस ससार में आकर जन्म मरण की परम्परा को प्राप्त नही होता अर्थात मोक्षस्थान ध्रुव है। नि य ह। जो लोग मुक्तात्मा का पुनरागमन मानते हैं व भ्रान्त हैं। क्योकि जब तक यह आत्मा आश्रवो से हित नही होता तब तक मोक्ष की प्राप्ति दलभ ही नही कि तु असम्भव है।

इस तरह यह निर्वाण की अवस्था रूप जरा व्याधि एव भौतिक शरीर से रहित अत्य त द खाभावरूप निरतिशय सुखरूप शा त क्षमकर शिवरूप धनरूप

---

१ अपुणागम गए — उत्तराध्ययन २१।२४ तथा
सत्वगुणसम्पन्नयाएण अपुणरावृत्ति जणयइ।
वही २९।४५।

२ अणगारेण जीवे सारीर
माणसाण दुक्खाण छेयणभेयण–सजो गाईण
वोच्छेय करेइ अव्वाबाह च सुह निव्वेत्तइ ॥
वही २९।४।

३ लोगत्तमुत्तम ठाण सिद्धि गच्छसिनीरओ ॥
वही ९।५८ तथा

निरासवे सखवियाण कम्म
उवेइ ठाण विउलत्तम धुव ॥ वही २ ।५२।

वृद्धि एवं ह्रास से रहित अविनश्वर ज्ञानरूप दर्शनरूप पुनर्जन्म से रहित तथा एकान्त अभिज्ञानरूप है। मोक्ष का वर्णन उत्तराध्ययन के छत्तीसवे अध्ययन में है लेकिन अनेक अध्ययनों की परिसमाप्ति में सिद्ध गति निर्वाण या मोक्ष प्राप्त होने का उल्लेख है।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए श्रद्धा ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रय की आवश्यकता पड़ती है। चार्वाक दर्शन को छोडकर अन्य सभी भारतीय दर्शनो का भी प्रधान लक्ष्य जीवों को मुक्ति की ओर ले जाना है। इस तरह उत्तराध्ययन में जो मुक्ति की अवस्था दर्शायी गयी है वह एक दिव्य अवस्था है जहाँ न तो स्वामी-सेवकभाव है और न कोई इच्छा इसे प्राप्त कर लेने पर जीव कभी भी संसार में नहीं आता। वह कर्म बन्धन से पूर्ण मुक्त हो जाता है। यह आत्मा के निर्लिप्त स्वस्वरूप की स्थिति है। सब प्रकार के सांसारिक बन्धनो का हमेशा के लिए अभाव होने से इसे मुक्ति कहा गया है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि धम्मपद एवं उत्तराध्ययनसूत्र जिस प्रकार आत्मा के विषय में एकमत नहीं हैं ठीक उसी प्रकार निर्वाण के विषय में भी एकमत नहीं हैं यद्यपि दोनो ग्रन्थो में निर्वाण का चर्चा है। धम्मपद में जहाँ विमुक्ति की अवस्था के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग किया गया है वहीं उत्तराध्ययनसूत्र में निर्वाण शब्द की अपेक्षा मोक्ष शब्द का ही प्रयोग अधिक है। लेकिन दोनो ग्रन्थो में निर्वाण के लिए सच्चे विश्वास ज्ञान और आचार विचार को प्रधानता दी गयी है। दोनो में मुख्य अन्तर यह है कि बौद्ध दृष्टि से द्रव्य सत्ता का अभाव ही निर्वाण है जब कि जैन दृष्टि से आत्मा की शुद्ध अवस्था निर्वाण है।

धर्म का स्वरूप

धर्म का स्वरूप बडा व्यापक है। उसकी इस विशेषता के कारण ही बड़-बड़े विद्वान उसका कोई ऐसा स्वरूप निर्धारित नहीं कर पाते हैं जो सर्वमान्य हो। यही

---

१ अरुविणोजीवणा नाणदसण सन्निया।
अउलं सुहं सपत्ता उवमाजस्सनत्थि उ ॥

उत्तराध्ययन ३६।६६।

२ वही ३६।४८–६७।

३ वही १।४८ ३।२ १।३७ ११।३२ १२।४७ १३।३५ १४।५३ १६।१७ १८।५३ २१।२४ २४।२७ २५।४३ २६।५२ ३।३७ ३१।२१ ३२।१११ ३५।२१ ३६। ६८।

४ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३८८ ८९।

कारण है कि धर्म की कोई एक सवमान्य परिभाषा नही उपलब्ध होती । व्युत्पत्ति के अनुसार इसके प्राय दो अर्थ किये जाते हैं (१) ध्रियते लोक अनेन इति धर्म अर्थात जिससे लोक धारण किया जाय वह धर्म है और (२) धरति धारयति वा लोक इति धम अर्थात जो लोक को धारण करे वह धम ह । मूल भावना यह है कि धम के द्वारा ही इस लोक का धारण या सचालन होता है । जीवन के चार पुरुषार्थों में धम का प्रमख स्थान है । धम की मान्यता के अनुसार धम और स य एक हैं तथा दोनों पर्याय वाची शब्द हैं । धम सत्य के ही माग का नाम ह । धम्मपद म भी सत्य सयम दम और अहिंसा को धर्म के ही अन्तगत माना गया ह । आचाय बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग में धम शब्द के मुख्यत चार अर्थों का विवचन किया ० (१) सिद्धा त (२) हतु (३) गुण और (४) निसत्त । बौद्ध-साहित्य म धम श द का प्रयोग और भी व्यापक अर्थ म किया गया ह । वह कही स्वभाव कही कत्तव्य कही वस्तु और कही विचार और प्रथा का वाचक भी बनकर आया ह । इसके अतिरिक्त धम शब्द का प्रयोग बाधि धम या ज्ञान धम के लिए भी कहा गया ह । ज्ञान का ही बौद्ध लोग स चा धम मानत थ । ज्ञान के अतिरिक्त धम शब्द का प्रयोग सत्य के अथ में भी मिलता है । धम्मपद म धम श द का प्रयोग भगवान बद्ध के उपदेशो के लिए किया गया ह । उसम लिखा ह कि बद्धिमान् लोग धम अर्थात भगवान बद्ध के वचनो को सुनकर उसी प्रकार शुद्ध और निमल हो जात है जिम प्रकार गम्भीर जलाशय मे जल निमल हो जाता ह । जो अ छी तरह उपदिष्ट धम म धर्मानुचरण करते हैं वे ही दस्तर मृत्यु के रा य को पार कर सकत है । इस प्रकार हम देखत ह कि धम्मपद म धम शब्द का प्रयोग भगवान् बद्ध के उप शो के अथ म किया गया है ।

---

१ बौद्ध दशन तथा अ य भारतीय दशन उपाध्याय भरतसिंह भाग १ पृ ११९ ।

२ यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो ।।
धम्मपद २६१ ।

३ बौद्ध दशन तथा अन्य भारतीय दशन भाग १ प १२१ ।

४ वही पृ १२ ।

५ यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
एव धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ।।   धम्मपद ८२ ।

६ य च खो सम्दक्खाते धम्मानुवत्तिनो ।
तेजना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्य सदुत्तरं ।।   वही ८६ ।

धम्मपद के तेरहवें लोकवग्ग म कहा गया है कि नीच कम न करें प्रमाद में म रहें आवागमन के चक्र म न पड उठ और घम का आचरण कर। सुचरित घम का आचरण करनेवाला धर्मचारी इस लोक तथा परलोक दोनो जगह सुखपवक रहता है।[1] लेकिन जिसने घम का उ लघन किया ह जो झठ बोलता है और परलोक का हँसी-मजाक उडाता है ऐसा मनुष्य किसी प्रकार के पाप करने से न डरेगा। उन्नीसवें धम्मटठवग्ग म घम म स्थित रहनेवालो की प्रशसा की गई है। अधिक बकवाद करने से मनष्य घम का धारण करनवाला नही क ला सकता। वही पुरुष सचमुच घम को धारण करनेवाला है जो यद्यपि थोडा बोलता है लेकिन अपने जीवन से उस सिद्धान्त को देखता ह जो मन य विचारपवक समान घम से दूसरो का पथ प्रदशन करता ह और जो धर्म द्वारा रक्षित तथा मघावी ह। वही धम को धारण करनेवाला है जो कभी घम की अवहेलना नही करता। घम की सवत्र प्रशसा की गयी है। धम्मपद में भी कहा गया है कि घम का दान सब दानो से श्रेष्ठ है घम की मिठास सब मिठाइयों से श्रेष्ठतम है घम का आन द सब सुखो से बढकर है।

जैन दशन म घम का व्युत्पत्तिमलक अथ ह धारणात घम अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म ह। ध धातु के धारण करने के अथ म घम शब्द का प्रयोग होता है। जैन-पर परा म वस्तु का स्वभाव घम कहा गया ह। प्र यक वस्तु का किसी न किसी प्रकार का अपना स्वभाव होता है। वही स्वभाव उस वस्तु का अपना घम माना जाता ह। आ मा के अहिसा सयम तप आदि गुणो को भी घम का नाम दिया गया ह। यही नही वरन समष्टि रूप म इसे इस प्रकार भी कह सकत हैं कि धर्म आत्मा की राग द्वष–हीन परिणति ह। इनके अतिरिक्त घम के और भी अनक अथ होते हैं। उदाहरण के लिए नियम विधान परम्परा यवहार परिपाटी प्रचलन आचरण कतव्य अधिकार न्याय सद्गुण नतिकता क्रिया सत्कम आदि अर्थों म कम शब्द का प्रयोग होता आया है।

---

१ धम्मपद १६७ १६९।

२ वही १७६।

३ वही २५७ २५९।

४ सब्बदान धम्मदान जिनाति स ब रस ध मरसो जिनाति।
सब्ब रति धम्मरसो जिनाति। वही ३५४।

५ जैन-दशन मेहता मोहनलाल प ८।

६ जैन दर्शन मनन और मीमासा मुनि नथमल प २९१।

७ भगवान् महावीर पाठक शोभनाथ प १९।

धम शब्द की वरीयता को परखने का मनीषियो ने भी खब प्रयास किया है। अत धम चित्त का वह भाव ह जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं। इस प्रकार विद्वानो ने धम की महत्ता को आँकने का श्लाघनीय प्रयास किया है किन्तु तथ्यत धम वही है जिससे मानवता का कल्याण हो। महावीर ने मानव-कल्याण हेतु धर्म की उपयोगिता का उपदेश इस रूप म दिया ह। यथा—जिस समय ससारी जीव जन्म जरा और मरण तथा आधि-व्याधिरूप जलराशि के महान वेग में बहते हुए व्याकुल हो उठत हैं उस समय इस धमरूप महाद्वीप की शरण म जान से उनकी रक्षा हो जाती ह। यहाँ पर ज न्म जरा और मृत्यु को समद्र जल के समान कहा गया है और श्रत चारित्ररूप धम को महाद्वीप बतलाया गया ह। इसलिए ससाररूप समुद्र के जरा-मरणादिरूप जल प्रवाह म बहते हुए प्राणियो को इसी धर्मरूप महाद्वीप का सहारा ल और इसीकी शरण में जाना सर्वोत्तम ह। किन्तु मनुष्य भौतिकता मे भटक धम की यथाथता को परख नही पाता जो उसके इस लोक और परलोक को सवारने मे सक्षम होता ह। तीथकर महावीर ने मनुष्यो को आगाह किया है कि जो रात्रि चली जाती है वह वापस लौटकर नही आती किन्तु अधम का सेवन करनवाले मनुष्य की सभी रात्रियाँ निष्फल हो जाती हं। अर्थात् मनुष्य उन रा।त्रयो म करवटें बदलता हुआ सुअवसर हाथ से न जाने दे सत्य आचरण से धम का पालन करे जिससे वास्तविक क ल्याण हो। क्योकि धम के अतिरिक्त इस ससार म कोई वस्तु विद्यमान नही जो तरे उपयोग म आए। तथ्यत स त्य शिव सु न्दरम की समष्टि ही धम ह। महावीर न धम के विषय में जो कुछ कहा वह लोक मङ्गल की भावना से सम्ब न्धित है। उनकी दृष्टि में पथकत्व कृत्रिमता व रूढ़िवादिता से ग्रस्त हिंसा या अन्य कष्टदायक कृत्य धम नही कहे जा सकत। यही कारण था कि तत्कालीन हिंसा का उ न्होंने घोर विरोध किया

---

१ जैन दर्शन प ९ १ ।

२ जरामरण वेगेण बुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइटठाय गई सरण मुत्तम॥ उत्तराध्ययन २३।६८।

३ आजा वच्चइ रयणी नसा पडिनियत्तई।

धम्म च कुणमाणस्स सफलाजन्ति राइओ॥
वही ४।२४ २५।

४ वही १४।४ ।

तथा प्रत्येक प्राणी को धम का ही आचरण स्वीकार करने के लिए कहा क्योकि धम का आचरण अति दष्कर है। इस प्रकार हम देखते ह कि धम का सम्बन्ध किसी पूजा आराधना बलि अथवा आड बर से नही ह अपितु वसुधैव कुटम्बकम की भावना से ह जिसमें सभी प्राणियो के कयाण का असीम हित समाहित है। महावीर की दृष्टि में धर्म का उद्देश्य है सुकम करना जिससे सुख मिलता ह जब कि धम से विमुख होने पर कुकर्म की प्रवृत्ति उपजती ह जा द खदायक होती है। तभी तो उन्होन कहा ह कि जो मनुष्य पाप करता ह वह घार नरक म जाता ह और जो आय धम का आचरण करनवाला ह वह दिव्य गनि म जाता ह। धम से सुख और अधर्म से दु ख मिलता है। अत मनुष्य को भली प्रकार समझकर इस वास्तविकता को परखना चाहिए। वसे तो मनुष्य इस लोक म धम की आराधना के लिए आया ह जो सदव उसकी रक्षा करता ह। धम के अतिरिक्त अन्य कोई यहा पर रक्षक नही ह।

महावीर ने धम की इस महत्ता को परखकर स्पष्ट कहा था कि धम प्रचार के पवित्रतम अनुष्ठान म यथाशक्ति योग देकर आत्मोद्धार एव परोद्धार क ो। जन जन के कयाण हेतु जहाँ धम अपक्षित ह वही स्वय के लिए भी इसकी उपयोगिता अनूठी ह। महावीर न आम-सयम हतु भी धम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मनरूप घोडा इस जीवात्मा को जिधर चाहे ले जाता है ऊँची-नीची जिस गति म चाह धकेल देता ह। इसलिए प्रयेक मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि अपन मन को सुधार ल उसे सन्मा ि पर लान का प्रयत्न करे। सरलता से ही आमा की शुद्धि होती ह और शुद्ध आ मा म ही धम स्थिर रहता ह। ग्रन्थ में अन्य उपमाओ द्वारा भी धम

---

१ धम्म चर सुदच्चर। उत्तराध्ययन १८।३३।

२ पडन्ति नरए घोरे जे नरापावकारिणो।
दिव्व च गइ गच्छन्ति चरित्ता धम्ममारिय॥
वही १८।२५।

३ एक्को हु धमो नरदेव।
ताण न वि जई अन्नमि हह किंचि॥
वही १४।४।

४ मनो साहस्सिओभीमो दट्ठस्सोपरिधावई।
त सम्म तु निगिण्हामि धम्म सिक्खाइकन्थग। वही २३।५८।

५ सोही उज्जुयभूयस्स-ग॥ वही २३।५८।
धम्मो सुद्धस्स चिटठई॥ वही ३।१२।

की वरीयता को बताना गया है। निम्न उदाहरण विचारणीय है जो भगवान् महावीर को वाणी से उद्भूत है जिस प्रकार स्नान करने के लिए बाहर एक जलाशय होता है उसी प्रकार आन्तरिक स्नान के लिए अहिंसा धमरूप जलाशय है जो कि कमरूप मल को दूर करन म समथ है तथा जिस प्रकार तडाग म सोपान आदि लगे होत हैं उसी प्रकार धमरूपी तडाग के ब्रह्मचय आदि शान्ति-तीथ हैं जो कमरूप मल को जड से दूर करने म तथा मिथ्यात्वादि कालुष्यरहित होने से आत्मा की प्रसन्न लेश्या के सपादन म समथ है। सो इस प्रकार के धमरूप जलाशय म स्नान किया हुआ आ मा कममल से रहित होकर निष्कलक हो जाता है। जीव उस परमशीतलता को प्राप्त करता हुआ समस्त अन्तर और बाह्य के दोषो को दूर करता ह। इसी स्नान के द्वारा कुशल पुरुषो ने और समाधिस्थ योगी महर्षियो न उत्तम स्थान को परमधाम को प्राप्त किया है।

मासारिक मवार के लिए धम का सम्बल आवश्यक है चाहे वह कोई भी क्षत्र क्यो न हो। यहाँ तक कि नीति निर्धारण म भी धर्म की उपयोगिता वरदान स्वरूप है। तभी तो महावीर ने कहा ह कि धमहीन नीति जगत् के लिए अभिशाप ह और नीतिहीन धम कोरी वैयक्तिक साधना है। अत ह साधक! जो व्यवहार धम से उत्पन्न है और ज्ञानी पुरुषो ने जिनका सदा आचरण किया है उनका आचरण करनवाला परुष कभी निन्दा को प्राप्त नहीं होता। धम की उपयोगिता इसी स्वाधीन एव स्थायी सुख को प्राप्त कराने म है जो अथ काम आदि किसी भी अन्य उपाय से प्राप्त नही हो सकता। धम से ही मनुष्य की सच्चे स्वाधीन सुख की इच्छा की पूर्ति हो सकती है। विवेक-दृष्टि से सोचा जाय तो ससार के समस्त पदार्थ जिनसे मनुष्य सुख की आशा रखता है अध्रव हैं अशाश्वत हैं। प्रत्येक पदाथ जिसम मनुष्य सुख

---

१ धम्मेहरए बम्भे सन्ति तित्थे
अणाविले अत्तपसन्न लेसे।

जहिं सिणाया विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तमं ठाण पत्ते॥

उत्तराध्ययन १२।४६ ४७।

२ धम्मज्जिय च ववहार बुद्धे हायरिय सया।
तमायरन्तो ववहार गरह नाभिगच्छई॥

वही १।४२।

की कल्पना करता है परिवर्तनशील है। इसलिए इस दु खप्रचर ससार म या सांसारिक पदार्थों में सुख तो राईभर है मगर दु ख पवत के बराबर है। फिर वह राईभर सुख भी स चा सुख नही ह सुख का विकार सुखाभास है। एसी स्थिति म मनुष्य को सोचना चाहिए कि वह कौन-सा काय है जिससे म दु ख से बच सकं। यह तो निश्चित है कि स्वाधीन और सच्चा सुख धम से ही प्राप्त होता है। ऐसे सच्चे सुख के भागी धर्म को जीवन म ओत प्रोत कर देनेवाले पूण धर्मिष्ठ वीतरागी मुनि ही हो सकते हैं अथवा वीतराग-माग पर चलनवाले धर्मिष्ठ साध-श्रावक-वर्ग हो सकते हैं। इसी प्रकार शुद्ध आ मतत्त्वरूप उत्तम सिद्धपद और उत्तम अरिहन्त वीतराग-पद की प्राप्ति के लिए एकमात्र साधन धम ही है। धम के द्वारा ही अरिहन्त सिद्ध और साध पदो को उत्तमत्व प्राप्त ह।

इस प्रकार हम देखत हैं कि धर्म की शक्ति दो प्रकार से प्रकट होती है—एक तो वह आपदग्रस्त व्यक्तियो का रक्षण करता है उन्हें शरण देता है दूसर वह सुख की प्राप्ति कराता है। उत्तराध्ययन म धम की इस द्विविध शक्ति पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। यथा—सकडो कष्टो म फँसे हुए क्लेश और रोग से पीडित मरण भय से हताश दु ख और शोक से पीडित व्यथित तथा जगत म अनेक प्रकार से याकुल एव निराश्रित जनो के लिए धर्म ही नि य शरणभत है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि धम के बिना मानव-जीवन की कोई कीमत नही है। किन्तु अवश्य ही उस धर्म का अथ है नैतिकता और सदाचार। प्राणरहित शरीर की तरह उस जीवन का मूल्य नहीं है जिसम धर्म अथवा नैतिकता नही रहती। अगर जीवन म धम का प्रकाश न हो तो वह अन्धा है और वह अपने लिये तथा दूसरो के लिए भी भारस्वरूप है। मनुष्य में से पशुता के नि कासन का श्रय धम को ही है। धम मनुष्य की दवी-वृत्ति है। यह प्रवृत्ति ही उसम दया दान सन्तोष करुणा अनुकम्पा क्षमा अहिंसा आदि अनक गुणो को उत्पन्न करती ह।

---

१ अधुवे असासयमि ससार मिदुक्खपउराए।
कि नाम होज्ज त कम्मय जणा ह दोग्गइन गच्छेज्जा॥

उत्तराध्ययन ८।१।

२ वही २।२२–३१।

३ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४४।

कर्म

बौद्धधर्म एक मनोवैज्ञानिक धर्म है। मनोविज्ञान की आधारशिला पर वह प्राणि-जगत् को कम्मदायाद कम्मस्सक कर्मयोनि और कम्मपटिसरण कहता है। भगवान् बुद्ध के इन वचनों में बौद्धधर्म का सार निहित है। बौद्धधर्म की यह कर्मवादिता उसकी बुद्धिवादिता का परिणाम है। बौद्ध विचारकों ने भी क्रिया के अर्थ में ही कर्म शब्द का प्रयोग किया है। वहाँ भी शारीरिक वाचिक और मानसिक क्रियाओं को कर्म कहा गया है जो अपनी नैतिक शुभाशुभ प्रकृति के अनुसार कुशल अथवा अकुशल कर्म क जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने कर्म शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक रूप में किया है। उसे वह चेतना का पर्यायवाची मानते थे। यह बात उनकी निम्नलिखित उक्ति से प्रकट है चेतना ही भिक्षुओ का कर्म है मैं ऐसा कहता हूँ। चेतनापूर्वक कर्म किया जाता है काया से वाणी से या मन से। यहाँ पर चेतना को कर्म कहने का आशय केवल यही है कि चेतना के होने पर ही ये समस्त क्रियाएँ सम्भव हैं। बौद्ध दर्शन में चेतना को ही कर्म कहा गया है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे कर्मों का निरसन किया गया है।

कर्म मूलत दो प्रकार के हैं—चेतना कर्म और चेतयित्वा कर्म। चित्त कर्म (मानसिक कर्म) और चेतयित्वा अथवा चेतसिक कर्म (काय और वचन से उत्पन्न होने के कारण कायिक और वाचिक कर्म) कहे गये हैं। इस प्रकार कर्म शब्द क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होता है लेकिन कर्म शब्द का अर्थ क्रिया से अधिक विस्तृत है। कर्म शब्द में शारीरिक मानसिक और वाचिक क्रियाओं का निर्धारण और उन भावी क्रियाओं के कारण उत्पन्न होनेवाली अनुभूति सभी समाविष्ट हो जाती हैं। कर्म में क्रिया का उद्देश्य क्रिया और उसके फलविपाक तीनों ही अर्थ लिये जाते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है केवल चेतना (आशय) और कर्म ही सकल कर्म नहीं है। कर्म के परिणाम का भी विचार करना होगा। इससे एक अपूर्व कर्म एक अविज्ञप्ति होती है।

बौद्ध-दर्शन कर्म के चैत्तसिक पक्ष को ही स्वीकार करता है और यह मानता

---

१ मज्झिमनिकाय चूलकम्मविभंगसुत्त ३।४।५।

२ संयुत्तनिकाय (रो) जिल्द २ पृ ३९४ अंगुत्तरनिकाय (रो) जिल्द २ पृ १५७-५८ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ८४।

३ बौद्धधर्म-दर्शन पृ २४९।

४ वही पृ २५५।

है कि बन्धन के कारण अविद्या वासना तष्णा आदि चत्तसिक तत्त्व ही हैं। यदि ऐसा नहीं तो मानना पडगा कि काय वाक और मन–ये तीन कर्मद्वार हैं। सभी कर्म इन्हीं द्वारों से सम्भूत हैं एव मन का सम्बन्ध सभी के साथ ह। मन उनका प्रतिशरण है। कहा गया है— सारी अवस्थाओ का मन अगुवा ह मन प्रधान ह और सारे कम मनोमय हैं। जब अपना मन बरा या भला होता ह तब कायिक और वाचिक कृत्य भी उसके मुताबिक बर या भले होते हैं।

बौद्धकम विचारणा म कर्मों का विभाजन अनक प्रकार से किया गया है। बुद्धघोष ने इन्हें चार प्रकार से विभाजित किया ह (१) कृत्य के अनुसार (२) विपाक देन के पर्याय से (३) विपाक के काल के अनुसार (४) विपाक के स्थान के अनुसार। सर्वास्तिवादी कर्मों का विभाजन किंचित निम्न प्रकार से करत थे।

कर्म विपाक के सम्बन्ध में बौद्ध और जन दृष्टिकोण

कम और विपाक की प परा से यह ससार चक्र प्रवतित होता रहता ह। भगवान् बद्ध कहत है कि कम से विपाक प्रवर्तित हात ह और विपाक से कम उत्पन्न होता है। कर्म से पुनज म होता है और इस प्रकार यह ससार प्रवर्तित होता ह। बौद्ध दार्शनिक भी कर्म और विपाक के सम्बन्ध म इसे स्वीकार करते हैं। कहा गया है कि कम और विपाक के प्रवर्तित होन पर वृक्ष बीज के समान किसीका पूव छोर नहीं जान पडता है। बौद्ध-दार्शनिको के अनुसार जसे किसी बीज के भुन जान पर उस बीज की दष्टि से बीज-वृक्ष की परपरा समाप्त हो जाती ह वैसे ही व्यक्ति के राग द्वेष और मोह का प्रहाण हो जान पर व्यक्ति की कम विपाक-परपरा का अन्त हो जाता ह। जन-दार्शनिको के अनुसार भी राग-द्वषरूपी कम बीज के भन जाने पर कर्म प्रवाह की परपरा समाप्त हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता ह कि क्या एक यक्ति अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल दूसर व्यक्ति को दे सकता है? क्या व्यक्ति अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों

---

१ मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेटठा मनोमया।

धम्मपद गाथा-सख्या १।

२ विसुद्धिमग्ग भाग २ प २ ४।

३ सिस्टम्स ऑफ बद्धिस्टिक थाट सोगेन यामाकामी पृ १५।

४ मज्झिमनिकाय (किन्तिसुत्त ३।१।३) तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३१४।

का ही भोग करता है अथवा दूसरों के द्वारा किये हुए शुभाशुभ का फल भी उसे मिलता है ? इस सन्दर्भ में दोनों दर्शनों के दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

बौद्ध-दृष्टिकोण के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते हैं कि सामान्य नियम यह है कि कम स्वकीय है जो कर्म करता है वही (सन्तान प्रवाह की अपेक्षा से) उसका फल भोगता है। किन्तु पालि निकाय में भी पुण्य परिणामना (पत्तिदान) है। वह यह भी मानता है कि मृत की सहायता हो सकती है। स्थविरवादी प्रेत और देवों को दक्षिणा देते हैं अर्थात् भिक्षुओं को दिये हुए दान (दक्षिणा) से जो पुण्य सचित होता है उसको देते हैं। बौद्धो के अनसार हम अपने पुण्य में दूसरे को सम्मिलित कर सकते हैं पाप में नही। इस प्रकार बौद्ध विचारणा कुशल कर्मों के फल-सविभाग को स्वीकार करती है। जैन विचारणा के अनसार प्राणी के शुभाशुभ कर्मों के प्रतिफल में कोई भागीदार नही बन सकता। जो व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है वही उसका फल प्राप्त करता है। उत्तराध्ययनसूत्र म स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ससारी जीव स्व एव पर के लिए जो साधारण कर्म करता है उस कर्म के फलभोग क समय बन्धु बान्धव (परिजन) हिस्सा नही लेते। इसी ग्रन्थ में प्राणी की अनाथता का निणय करते हुए यह बताया गया है कि न तो माता पिता और पुत्र-पौत्रादि ही प्राणी का हिताहित करने में समर्थ हैं। इस प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र में कर्म-फल-संविभाग को अस्वीकार किया गया ह।

इस प्रकार बौद्ध विचारक न केवल कर्मों के विपाक में नियतता और अनियतता को स्वीकार करते हैं वरन् दोनो की विस्तत व्याख्या भी करते हैं। वे यह भी बताते हैं कि कौन कर्म नियत विपाकी होगा। प्रथमत वे कर्म जो केवल कृत नहीं किन्तु

---

१ बौद्धधर्म-दर्शन पृ २७७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३१६।

२ कत्तारमेव अणुजाइकम्म ॥

उत्तराध्ययन १३।२३।

कम्मस्सते तस्स उवेय-काले

नबन्धवा बन्धवय उवेन्ति ॥ वही ४।४।

३ त मे तिगिच्छ कुव्वन्ति चाउप्पाय जहाहिय ॥

नय दुक्खा विमोएइ एसामज्झ अणाहया ॥

वही २।२३-३।

उपचित भी हैं नियत विपाक कम हैं। दूसरे वे कम जो तीव्र प्रसाद (श्रद्धा) और तीव्र क्लेश (राग-द्वेष) से किय जाते हैं नियत विपाक कम हैं। बौद्ध-दशन की यह धारणा जैन-दशन से बहुत कुछ मिलती जुलती ह। लेकिन प्रमुख अन्तर यही है कि जहाँ बौद्ध दशन तीव्र श्रद्धा और तीव्र राग द्वेष दोनो अवस्था म हानेवाले कम को नियत विपाकी मानता है वहाँ जैन-दशन मात्र राग द्वेष (कषाय) की अवस्था म किये हुए कर्मों को ही नियत विपाकी मानता ह। दोनो ही इस बात से सहमत हैं कि मातृवध पितृवध तथा धम सघ और तीथ तथा ध प्रवतक के प्रति किये गये अपराध नियत विपाकी होते हैं।

कमवाद के दाशनिक और नतिक पक्ष के अतिरिक्त भगवान बुद्ध उसके सामाजिक पक्ष म भी विश्वास करत थे। सामाजिक क्षेत्र म वह जन्मजात वणव्यवस्था में बिल्कुल विश्वास नही करत थ। उनका कहना था कि कोई भी वर्णव्यवस्था ज म के आधार पर स्थापित नही की जा सकती है। बुद्धोपदिष्ट चातुवर्णी शुद्धि का आधार कम ही ह। चाह शूद्र हो या अ य कोई प्राणी यदि वह स्मृति प्रस्थान आदि की भावना करता ह तो निर्वाण का साक्षा कार करता है। कर्म मनुष्य मनुष्य म भेद नही करता। पुण्य कर्म से आयु की वृद्धि होती ह और बत्तीस महापुरुष-लक्षण भी मनुष्य पूवज म के किय कर्मों के परिणामस्वरूप पाता है। कहन का तात्पय यह है कि विश्व की व्यवस्था में कम ही प्रधान है। इसलिए मनुष्य को अधिक-से-अधिक शुभकम करना चाहिए। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कम प्रतिशरण बनने का उपदेश दिया था। वे बद्धशरण और कमशरण म कोई भेद नही मानते थे। उनका कहना था कि जिसका कम अच्छा है वह बुद्ध के समीप ह चाहे वह उनसे सौ योजन की दूरी पर भी हो। जिसका कर्म बुरा है वह बुद्ध से दूर है चाहे वह उनकी सघाटी के छोर को पकडकर उनके पैरो के पीछ पैर रखता हुआ ही चल रहा हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि कमवाद का सिद्धा त बौद्धधम की आधारशिला है।

जैन-दशन म कम शब्द के अनेक अथ मान गये हैं। साधारणत कम शब्द का

---

१ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३२४।

२ अग्गञ्ज-सुत्त (दीघनिकाय ३।४)।

३ चक्कवति-सीहनाद-सुत्त (दीघनिकाय ३।३)।

४ लक्खणसुत्त (दीघनिकाय ३।७)।

५ सघाटिसुत्त (इतिवुत्तक)।

अर्थ क्रिया होता है[1] अर्थात् जो कुछ किया जाता है वह कर्म है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जीव के राग-द्वेषरूप परिणामों के निमित्त से जो रूपी अचेतन द्रव्य जीव के साथ सम्बद्ध होकर ससार में भ्रमण कराते है कर्म है। कर्म के बीज राग और द्वेष है कर्म मोह से उत्पन्न होता है कम जन्म-मरण का मूल है और ज म-मरण ही दु ख है। यह जीव द्वारा किये जाने के कारण कर्म कहलाता है। कर्म जब आत्मा के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं तो वे मुख्य रूप से आठ रूपों में परिवर्तित हो जाते है जिन्हें कर्मों के मुख्य प्रकार कह सकते है। आठ मूल कर्मों या कर्म प्रकृतियों के नाम क्रमश इस प्रकार है (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय कर्म। इनम प्रथम चार कर्मों को घातिया कम कहते हैं क्योंकि ये आत्मा के गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्म अघातिया है क्योकि ये आत्मस्वरूप का घात नही करते। ग्र थ म इसीलिए चार घातिया कर्मों के विनष्ट होने पर जीव को जीवन्मुक्त मान लिया गया है। क्योकि शेष चार अघातिया कम आयु के पूण होने पर एक साथ बिना

---

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३ ५।

२ उत्तराध्ययन ३३।१ १६।

३ रागो य दोसो वि य कम्मबीय
कम्म च मोहप्पभव वयति।
कम्म च जाई मरणस्स मूल
दुक्ख च जाई मरण वयति ॥

वही ३२।७।

४ नाणस्सावरणिज्ज दसणावरण तहा।
वेयणिज्ज तहा मोह आउकम्मं तहेव य ॥
नामकम्म च गोय च अन्तराय तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइ अटठेव उ समासओ ॥ वही ३३।२ ३ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ १५४–१६१।

५ पसत्य जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणन्तघाइपज्जेव खवेइ।

उत्तराध्ययन २९।८।

वेयणिज्ज आउय नामंगोत्त च एए चत्तारि विकम्मं से जुगव खवेइ।

वही २९।७३ और आगे २९।४२ ५९ ६२।

विशेष प्रयत्न के नष्ट हो जाते हैं। नीचे आठों कर्मों के स्वरूप आदि का वर्णन किया जा रहा है—

१ ज्ञानावरणीय कर्म

जिसके द्वारा पदार्थों का स्वरूप जाना जावे उसका नाम ज्ञान है तथा जो कर्म ज्ञान का आ छादन करनेवाला हो वह ज्ञानावरणीय कम है। ज्ञान पाँच प्रकार का है। यथा—(१) श्रतज्ञानावरण (२) आभिनिबोधिक ज्ञानावरण (३) अवधि ज्ञानावरण (४) मन पययज्ञानावरण (५) केवलज्ञानावरण।

२ दशनावरणीय कम

पदार्थों के सामा य बोध का नाम दशन है। अत जिस कम के द्वारा इस जीवात्मा का सामान्य बोध आवृत हो जावे उसे दशनावरणीय कहते हैं। इस कम के ९ भेद गिनाय गये ह जिसम प्रथम पाँच निद्रा से सम्बन्धित हैं तथा अन्य चार दशन सम्बन्धी हैं (१) निद्रा (२) निद्रा निद्रा (३) प्रचला (४) प्रचला प्रचला (५) स्त्यानगृद्धि (६) चक्षदशनावरण (७) अचक्षदशनावरण (८) अवधिदशनावरण (९) केवलदशनावरण।

३ वेदनीय कम

जिस कम के द्वारा सुख-दु ख का अनुभव किया जावे उसका नाम वेदनीय कम

---

१ उत्तराध्ययन ३२।१ ९।

२ नाणावरण पचविह सुय आनिणिबोहिय।
आहिनाण च तइय मण नाणं च केवल ॥ वही ३३।४ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प १५४।

३ निद्दातहेव पयला निद्दानिद्दा पयल पयलाय।
तत्तोय थीण गिद्धी उ पचमा होइ नायव्वा ॥
चक्खुम चक्ख ओहिस्स दसण केवले य आवरणे।
एव तु नवविगप्पं नायव्व दसणा वरण ॥ उत्तराध्ययन ३३।५ ६ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ १५५।

४ वेयणीय पिय दुविह सायमसाय च आहिय।
सायस्स उ बहू भया एमेव असायस्स वि ॥
उत्तराध्ययन ३३।७।

है। यह दो प्रकार का है सातावेदनीय और असातावेदनीय। इन दोनों के पुन अनेक भेद हैं जिसे ग्रन्थ म गिनाया नही गया है।

४ मोहनीय कम

जिस कर्म के प्रभाव से जीवात्मा जानती हुई भी मूढ़ता को प्राप्त हो जावे उसको मोहनीय कर्म के नाम से अभिहित किया गया है। इसके प्रमुख दो भेद हैं दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय पुन तीन प्रकार का है (१) सम्यक्त्व मोहनीय (२) मिथ्यात्व मोहनीय और (३) सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय (मिश्र मोहनीय)। सदाचार म मूढ़ता पैदा करनेवाले चारित्र मोहनीय कम के दो भद बताये गये हैं कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद ग्रन्थ म बताये गये ह और नोकषाय के सात अथवा नौ भेद हैं।

५ आयुकम

जिस कम के प्रभाव से जीवात्मा अपनी आयु को पूर्ण कर उस कम को आयु

---

१ उत्तराध्ययन ३३।७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प १५७।

२ मोहणिज्ज पि दविह दसण चरण तहा।
दसणं तिविह वुत्त चरण दुविह भवे॥
उत्तराध्ययन ३३।८ २९।७२ ५ ६ २९ ३२।१ २ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प १५७।

३ सम्मत चेव मिच्छत्त सम्मामिच्छत्तमेवय।
एयाओ तिन्नि पयडीओ मोहणिज्जस्सदसण॥
उत्तराध्ययन ३३।९ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५७ १५८।

४ चरित्तमोहण कम्म दुविह तु वियाहियं।
कसाय मोहणिज्ज च नोकसायं तहेवय॥
उत्तराध्ययन ३३।१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५८।

५ सोलस विहभेएणं।
कम्मं तु कसायजं॥ उत्तराध्ययन ३३।११ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५९।

६ सत्त विह नवविह वा कम्म च नोकसायज॥
उत्तराध्ययन ३३।११ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५९ १६।

कम कहते हैं। चार गतियों के आधार से इसके चार भेद किये गये हैं[1] (१) नरकायु (२) तिर्यगायु (३) मनुष्यायु और (४) देवायु। यहाँ एक बात विशेष ध्यान रखने की है कि ग्रन्थ म सूत्राथ चिन्तन का फल बतलाते हुए लिखा है कि इससे जीव आयुकर्म को छोडकर शेष सात कर्मों के प्रगाढ़ बन्धन को शिथिल कर देता है। किन्तु आयुकम का बन्ध विकल्प से करता है। इससे स्पष्ट है कि आयुकम शेष सात कर्मों से कुछ भिन्नता रखता है।

६ नामकम

शरीर आदि की रचना का हेतु जो कम है उसको नामकम कहते हैं। यह दो प्रकार का है शुभनाम और अशुभनाम। इस कर्म के प्रभाव से ही जीव को शुभाशुभ शरीर इन्द्रिय आदि की प्राप्ति होती है।

७ गोत्रकम

जिसके द्वारा जीवात्मा ऊच-नीच कुल में उत्पन्न हो अर्थात ऊच-नीच सज्ञा से सम्बोधित किया जावे उसका नाम गोत्रकम है। इसके उच्च और निम्न दो भेद हैं।

८ अन्तरायकम

जो कम दान आदि में विघ्न उपस्थित कर देवे उसकी अन्तराय सज्ञा है। कहने का अथ यह है कि देनेवाले की इच्छा तो देन की हो और लेनेवाले की इच्छा लेने की हो परन्तु ऐसी दशा में भी दाता और याचक की इच्छा पूरी न हो यह

---

१ नेरइय तिरिक्खाउ मणुस्साउत्थतेवय।
देवाउय चउत्थ त आउकम्म चउव्विह॥
उत्तराध्ययन ३३।१२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६ ।

२ अणुप्पे हाएण आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ धणिय बधणबद्धाओ सिढिल-बंधणबद्धाओ पकेरइ आउय चणकम्म सियबन्धइ सियनो बन्धइ।
उत्तराध्ययन २९।२३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६ ।

३ नामकम्म तु दुविह सुहमसुह च आहिय।
सुहस्स उबहूमेया एमेव असुहस्सवि॥
उत्तराध्ययन ३३।१३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६१।

४ गोयकम्मं दुविह उच्च नीय च आहिय।
उच्च अट्ठविह होइ एव नीय पि आहिय॥
उत्तराध्ययन ३३।१४।

जिस कर्म के कारण सम्भव होता है उसे जैन-परिभाषा में अन्तरायकर्म कहा गया है। इसके पाँच भेद ग्रन्थ में गिनाये गये हैं यथा—दानान्तराय लाभान्तराय भोगा न्तराय उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की विभिन्न स्थितियाँ भी बतायी गयी हैं जो इस प्रकार हैं —

कर्म	अधिकतम समय	न्यूनतम समय
१ ज्ञानावरणीय	तीस कोटाकोटि सागरोपम	अन्तमुहूत
२ दर्शनावरणीय		
३ वेदनीय		बारह मुहूत
४ मोहनीय	सत्तर कोटाकोटि सागरोपम	अन्तर्मुहूत
५ आयु	तैंतीस सागरोपम	
६ नाम	बीस कोटाकोटि सागरोपम	आठ मुहूत
७ गोत्र		
८ अन्तराय	तीस कोटाकोटि सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त

उपयक्त स्थितियाँ कर्मों के मूल भेदों की अपेक्षा से ही हैं। इस स्थिति की सीमा के अन्दर कम अपना फल दिखाकर नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये नये कम आते रहते हैं।

इस तरह यद्यपि कर्मों का वणन पूर्ण हो जाता है परन्तु कर्मों के रूपी होने पर भी उन्हें इन नग्न नत्रों से देखना सम्भव नही है। यह कैसे समझा जाय कि अमुक प्रकार के कम का बन्ध हुआ है इसके लिए ग्रन्थ मे कमलेश्याओं का वर्णन किया गया है जिसका अर्थ होता है आत्मा के बचे हुए कर्मों के प्रभाव से व्यक्ति में उत्पन्न

---

१ दाणे लाभे य भोगेय उवभोगे वीरिएतहा ।
पचविहमंतराय समासेण वियाहिय ॥

उत्तराध्ययन ३३।१५ ।

२ उदहीसरिनामाण तीसई कोडिकोडिओ ।

नामगोत्ताण उक्कोसा अट्ठमुहुत्ताजहान्नेया ॥
वही ३३।१९-२३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६३ ।

होनेवाला अध्यवसाय विशेष। लेश्या के वर्णन द्वारा उत्तराध्ययन में व्यक्ति के आचरण के अनुसार शुभाशुभ फल का कथन किया गया है। व्यक्तियों के अच्छे और बुरे आचरण को तरतम भाव से छह भागो में विभक्त करके तदनुसार ही छह लेश्याओं के स्वरूप का वर्णन किया गया है। क्रमश उनके नाम हैं —कृष्ण नील कापोत तेज

---

१ उत्तराध्ययन ३४।३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६५।

२ पचासवप्पवत्तो तीहिं अगुत्तो छस अविरओय।
तिव्वारम्भपरिणओ खुददो साहसिओ नरो॥
निद्धन्धसपरिणामो निस्ससो अजिइन्दिओ।
एयजोगसमाउत्तो किण्हलेसतु परिणम॥

उत्तराध्ययन ३४।२१ २२ ३४।४ १ १६ २८ २ ३३ ३४ ४३ ४५ ४८ ५६ ५८–६।

३ इस्सा अमरिस-अतवो अवि ज-माया अहो–
गेद्धी पओसे य सढ रिया य।
पमत्ते रसलोलए सायगवे सए य॥
आरम्भाओ अविरओखुद्दो साहस्सिओ नरो।
एय जोगसमाउत्तो नील लेस तु परिणमे॥

वही ३४।२३ २४ ३४।५ ११ १६ १८ २ ३३ ३५ ४२ ४९ ५६ ५८–६।

४ वके वक समायारे नियडि ले अण्जुए।
पलिउचग ओवहिए मि छादिटठी अणारिए॥
उप्फालग दुटटवाईय तण यावि य मच्छरी।
एय जोगसमाउत्तो काउलेस तु परिणमे॥

वही ३४।२५ २६ ३४।६ १२ १६ १८ २ ३३ ३६ ४ ४१ ५ ५६ ५ –६।

५ नीयावित्ती अचवले अमाई अकु ऊहले।
विणीयविणए दन्ते जोगव उवहाणव॥
पियधम्मे दढधम्मे वज्जभीरु हिएसए।
एय जोगसमाउत्तो तेउलेस तु परिणम॥

वही ३४।२७ २८ ३४।७ १३ १७ १९ २ ३३ ३७ ४ ५१–५३ ५७–६।

वाले को यमराज नही देखता । यह हसना कैसा और यह आनन्द कैसा जब चारों तरफ बराबर आग लगी हुई ह ? अन्धकार से घिरे हुए प्रकाश को क्यों नही देखते हो ?

४ एकत्व भावना

उत्तराध्ययन के अनुसार मनुष्य अकेला ही ज मता ह और अकेला ही मरता है हर हालत म उसका कोई साथी नही ह ऐसा विचारना एकत्व भावना है। इसके अन्तगत साधक यह चिन्तन करता ह कि जीव सवथा अकेला ही रहता है। जन्म से बाल्यावस्था युवावस्था बढ़ापा और मृत्यु के समय तक उसे कोई दूसरा सहायक नहीं बन पाता। चाहे जितना धन वैभव घर-द्वार पुत्र-कलत्र हो मरते समय किसीका कोई साथ नही देता। यह जीव द्विपद चतुष्पद क्षत्र घर धन-धा य और सर्ववस्तु को छोडकर तथा दूसरे कम को साथ लेकर पराधीन अवस्था म परलोक के प्रति प्रयाण करता है और वही कम के अनुसार अच्छी या बरी गति को प्राप्त करता है।

धम्मपद म भी एकत्व भावना का विचार उपल ध है। भगवान बुद्ध कहते हैं कि अपन से जात अपन से उत्पन्न अपने से किया हुआ पाप ही दुबद्धि मनुष्य को विदीण कर देता ह जिस प्रकार कि पाषाण से निकला वज्र पाषाणमय मणि को छेद डालता है। अपने पाप का फल मनुष्य स्वय भोगता है। पाप न करने पर वह स्वय शुद्ध रहता है प्रत्यक पुरुष का शद्ध अथवा अशुद्ध रहना उसी पर निभर है। दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नही कर सकता। इसलिए कहा गया है कि जितनी हानि शत्र शत्र की या वैरी वैरी की करता ह उससे अधिक बुराई झठे माग में लगा हुआ यह चित्त करता ह।

---

१ धम्मपद १८ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प ४२८।

२ धम्मपद १४६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२८।

३ उत्तराध्ययन ४।४।

४ वही १३।२४ १९।७७ २।३७ ४८ तुलनीय धम्मपद ४२।

५ धम्मपद १६१ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२५।

६ धम्मपद १६५ तुलनीय उत्तराध्ययन २।३६ ३७।

७ धम्मपद ४२।

५ अन्यत्व-भावना

संसार के सभी पदार्थ मुझसे भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूँ। ऐसा विचार किया जाता है कि देहादि समस्त इन्द्रियाँ अथवा बाह्य पदार्थों से आत्मा का कोई लगाव नहीं बल्कि वे सारी चीजें आत्मा से एकदम भिन्न ही हैं। आदमी अकेला जन्मता है और अकेला मरता है। उसकी सज्ञा विज्ञान और वेदना भी व्यक्तिगत होती है। अन्यत्व भावना का मुख्य लक्ष्य साधक की बाह्य आसक्ति को कम करना है।

धम्मपद में अन्यत्व भावना का सुन्दर चित्रण नैरात्म्य-दर्शन के रूप में हुआ है। कहा गया है अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित होकर निरथक काष्ठ की भाँति पृथ्वी पर शयन करेगा। जिस प्रकार राजाओं के चित्रित रथ जीण हो जाते हैं उसी प्रकार शरीर भी वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। जहाँ मूख लोग दु खी होते हैं और ज्ञानी लोगो को आसक्ति नहीं होती। इसलिए मनुष्य स्वय की रक्षा करे क्षणभर भी न चूके। क्षण को चुके हुए लोग नरक में पडकर शोक करते हैं।

६ अशुचि भावना

शरीर की अशुचिता का विचार करना अशचि भावना है। उत्तराध्ययनसूत्र में भी शरीर की अशचिता एव अशाश्वतता का निर्देश है। उसमें कहा गया है कि यह शरीर अनित्य अर्थात् क्षणभगुर है और स्वभाव से अपवित्र है क्योंकि इसकी उत्पत्ति शुक्र शोणित आदि अपवित्र पदार्थों से ही देखी जाती है तथा इस शरीर की अपेक्षा से इसम निवास करनवाला जीव भी अशाश्वत ही है अथवा इसमें जीवात्मा का निवास भी अशाश्वत ही है। इसके अतिरिक्त यह शरीर नाना प्रकार के द ख और क्लेशो का भाजन है क्योंकि जितने भी शारीरिक अथवा मानसिक द ख अथवा क्लेश हैं वे सब शरीर के आश्रय से ही होत ह। इसलिए यह शरीर अनेक प्रकार के दु खों और क्लेशो का स्थान है।

---

१ उत्तराध्ययन १८।१४ १५ १३।२५।

२ धम्मपद ४१।

३ वही १५१।

४ वही १७१।

५ वही ३१५।

६ इमं सरीरं अणिच्चं असुइ असुइ सभव।
असासयावासमिणं दुक्ख-केसाणभायणं ॥

उत्तराध्ययन १९।१३।

धम्मपद में भी कहा गया है कि अनेक प्रकार के वस्त्रालकारादि से सजाये हुए किन्तु घावों से भरे हुए मास वसा मज्जा आदि से फूले हुए अनक दु खों से पीड़ित तथा अनेक सकल्पोंवाले इस चित्रित शरीर को तो देखो जिसकी स्थिति स्थायी नहीं है। यह शरीर जरा-जीण रोगो का घर है क्षणभगुर ह दग घ का ढेर है और किसी समय ख ड-खण्ड हो जायेगा क्योंकि जीवन का अन्त ही मरण है।

७ आस्रव भावना

दु ख अथवा कमब ध के कारणो पर विचार करना आस्रव भावना है। परन्तु आस्रव से मुख्यतया पापास्रव को समझा जाता ह। इसीलिए उत्तराध्ययन म पापास्रव के पाँच भेदों का सकेत किया गया ह। बौद्ध-परम्परा म आस्रव भावना के सम्ब ध में बुद्ध का कहना ह कि जो कतव्य को बिना किय छोड देत है और अकतव्य करते हैं एसे उद्धत तथा प्रमत्त लोगो के आस्रव बढ़ जाते हैं। पर तु जिनकी चतना शरीर के प्रति जागरूक रहती है जो अकरणीय आचरण नही करत और निर तर सदाचरण करत हैं एसे स्मृतिमान् और सचेत मनुष्यो के आस्रव नष्ट हो जात ह। दूसरो के दोष देखनेवाले तथा सदा दूसरो से चिढनवाले के आस्रव (चित्त के मल) बढ़त हैं। वह चित्त के मैलो के विनाश से दूर हटा हुआ है। लेकिन जो सदा जागरूक रहते हैं और रात दिन शिक्षा ग्रहण करत रहते हैं अर्थात अपने दोषों के क्षय और गुणो की वृद्धि करने म लगे रहते हैं और एक ही निर्वाण जिनका परायण है अ तिम उद्देश्य है उनके आस्रव अस्त हो जाते ह।

८ सवर भावना

सवर भावना म आस्रव के विपरीत कर्मों के आगमन को रोकने के उपायों पर विचार किया जाता है। सवर भावना आस्रव भावना का विधायक पक्ष है। उत्तराध्ययन

१ धम्मपद १४७।

२ वही १४८ १४९ १५ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२६।

३ उत्तराध्ययन ३४।२१ १९।३४ २।४५ २९।११।

४ धम्मपद २९२ २९३ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलना मक अध्ययन भाग २ पृ ४२९।

५ धम्मपद २५३।

६ वही २२६।

सूत्र में कहा गया है कि संयम से यह जीव आस्रव से रहित हो जाता है तथा कायगुप्ति से जीव संवर को प्राप्त करता है और सवर के द्वारा कायगुप्तिवाला जीव सर्व प्रकार के पापास्रवों का निरोध कर देता है।

धम्मपद में भी सवर-भावना का उल्लेख मिलता है। बुद्ध का कथन है कि आँख का सवर (सयम) उत्तम है कान का सवर उत्तम ह प्राण का सवर उत्तम है जीभ का सवर उत्तम है। काया वाणी और मन का सवर भी उत्तम ह। जो सवत्र सवर करता है वह द खों से छट जाता है। इसलिए भिक्ष को सदैव इस सम्बन्ध में स्मृतिमान् रहना चाहिए।

९ निजरा भावना

जिन कर्मों का ब न्ध पहले हो चुका ह उनको नष्ट करन के उपायो का विचार करना निजरा भावना है। उत्तराध्ययनसूत्र म कहा गया है कि नाले बन्द कर देने व अन्दर के जल को उलीच-उलीचकर बाहर निकाल देने पर जैसे महातालाब सूख जाता है वैसे ही आस्रवद्वारों को बन्द कर देने और पूर्वसञ्चित कर्मों को तपस्या के द्वारा निर्जीव करने पर आत्मा पुद्गल-मुक्त हो जाती है।

१ लोक-भावना

लोक की रचना आकृति स्वरूप आदि पर विचार करने के लिए लोक-भावना है। जन दशन के अनुसार यह लोक किसीका बनाया हुआ नही है और अनादिकाल से चला आ रहा है। आत्माए भी अनादिकाल से अपने शुभाशुभ कार्यों के अनुसार परिभ्रमण कर रही हैं। इस लोक के अग्रभाग पर सिद्धस्थान है। सिद्धस्थान के नीचे ऊपर के भाग म स्वर्ग और अधोभाग में नरक है। इसके मध्य भाग मे तियञ्च एव मनुष्यो का निवास है। लोक की इस आकृति एव स्थिति पर विचार करते हुए साधक सदैव यही सोचे कि उसका आचार एसा हो जिससे उसकी आत्मा पतन के स्थानो को

---

१ उत्तराध्ययन २९।२७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२९।

२ उत्तराध्ययन २९।५५।

३ धम्मपद ३६ ३६१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३ ।

४ उत्तराध्ययन ३ ।५ ६।

छोडकर ऊर्ध्वलोक में जन्म ले या लोकाग्र पर आकर मक्ति प्राप्त कर सके। यही इस भावना का सार है।

धम्मपद में भी कहा गया है कि नीच धर्म का सेवन नही करना चाहिए प्रमाद से दूर रहना चाहिए मिथ्या धारणा में नही पडना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से आवागमन का चक्र बढ जाता है। यह लोक अन्धे के सदृश है यहाँ देखनेवाले ही है जाल से मुक्त पक्षी की भाँति बिरले ही स्वर्ग जाते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि यह विश्व बौद्ध-दर्शन की तरह अभावरूप नही है अपितु यह उतना ही सत्य और ठोस है जितना हम प्रतीत होता ह।

११ बोधि-दुलभ भावना

बोधि दलभ भावना के द्वारा यह चिन्तवन किया जाता ह कि सन्माग का जो बोध प्राप्त हुआ ह उसका सम्यक आचरण करना अत्यन्त दुष्कर है। इस दलभ बोध को पाकर भी सम्यक आचरण के द्वारा आत्मविकास अथवा निर्वाण को प्राप्त नही किया तो पुन एसा बोध होना अत्यन्त कठिन है। जैन विचार में चार चीजो की उपलब्धि अत्यन्त दलभ कही गयी है—ससार म प्राणी को मनुष्यत्व की प्राप्ति धर्म श्रवण शुद्ध श्रद्धा और सयम-माग में पुरुषाथ।

धम्मपद मे कहा गया है कि मनुष्यत्व की प्राप्ति दलभ है मानव-जन्म पाकर भी जीवित रहना दुलभ है कितने अकाल म मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य बनकर सद्धम का श्रवण दुलभ है और बद्ध होकर उत्पन्न होना तो अत्यन्त दलभ है।

१२ धर्म-भावना

धर्म के स्वरूप और उसकी आत्मविकास की शक्ति का विचार करना धम भावना है। धर्म के वास्तविक स्वरूप का विचार करना आवश्यक है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि ससार में एकमात्र शरण धम ही है इसके सिवा अन्य कोई

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र का ३६वाँ अध्ययन तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प ४३१।

२ धम्मपद १६७।

३ वही १७४।

४ उत्तराध्ययन ३।८–११ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३१।

५ धम्मपद १८२ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३२।

रक्षक नहीं है। जरा और मृत्यु के प्रवाह में वेग से डबते हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप ही उत्तम स्थान और शरणरूप है।

धम्मपद में कहा गया है कि धम के अमृत रस का पान करनेवाला सुख की नीद सोता है उसका चित्त प्रसन्न रहता है। पण्डित पुरुष आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम माग पर चलता हुआ आनन्दपूर्वक रहता है।

इस प्रकार इन बारह अनुप्रक्षाओं अथवा भावनाओ के चित्तवन से चित्त समभाव युक्त होता है जिनसे कषायों का उपशमन होता ह और सम्यक्त्व प्रकट होता ह। वैराग्य म दृढता आती ह। ससार-सम्बन्धी द ख-सुख पीडा जन्म मरण आदि का मनन चिन्तन करने से वृत्ति अन्तमखी होती है। इसी कारण इन्हें वैराग्य की जननी कहा गया है। धम्मपद म अनुप्रक्षा श द के स्थान पर भावना का प्रयोग है और यद्यपि भावनाओ को वहाँ न उस प्रकार का पारिभाषिक महत्त्व प्राप्त है और न उनकी एक स्थान पर १२ अथवा अन्य सख्याओं के रूप म गणना है फिर भी उत्तराध्ययन की विभि न अनुप्रेक्षाओ के समानान्तर भाव धम्मपद म भी प्राप्त हो जाते हैं। ●

---

१ उत्तराध्ययन १४।४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३ ।

२ उत्तराध्ययन २३।६८।

३ धम्मपद १६९ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३१।

अध्याय ४

धम्मपद मे प्रतिपादित बौद्ध आचार और उसकी उत्तराध्ययन मे प्रतिपादित जैन आचार मीमासा से तुलना

आचार और विचार जीवन-यात्रा की गाडी के दो पहिय हैं तथा परस्पर सम्बद्ध हैं। डा मोहनलाल महता ने अपनी पुस्तक जन आचार म इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है। आचार बिना विचार की प्ररणा से सम्भव नहो ह और उसी प्रकार विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए आचार की अनिवायता होती ही है। जब तक आचार को विचारो का सहयोग प्राप्त न हो अथवा विचार आचार रूप म परिणत न हो तब तक जीवन का यथाथ विकास नही हो सकता।

अत सिद्धान्त और यवहार अथवा ज्ञान एव क्रिया अथवा विचार एव आचार के सम्यक सन्तुलन से ही व्यक्तित्व का विकास होता ह। इस द्वैत के लिए ज्ञान एव आचार शब्द का भी प्रकारा तर से प्रयोग होता है। इन दोनो की उपयुक्तता एव अनिवायता के सम्बन्ध म बताया भी गया है कि जिस प्रकार अभीष्ट स्थान पर पहुचन के लिए निर्दोष आँख व पैर दोनो आवश्यक हैं उसी प्रकार आध्यात्मिक सिद्धि के लिए दोषरहित ज्ञान एव चारित्र दोनों अनिवाय हैं। दूसर शब्दो म ज्ञानविहीन आचरण नत्रहीन पुरुष की गति के समान ह जब कि आचाररहित ज्ञान पगु पुरुष की स्थिति के सदृश है।

भारतीय दशनो म आचार एव विचार दोनो को समान अधिकार दिया गया है। आचार एव विचार को ही प्रकारान्तर से क्रमश यवहार और सिद्धान्त अथवा क्रिया एव ज्ञान अथवा धम एव दशन कहा गया ह।

अष्टाङ्गिक माग

बौद्धधम का चौथा आयसत्य दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा का अपर नाम आय अष्टाङ्गिक माग ह। यह अष्टाङ्गिक माग बौद्धधम की आचार मीमासा का चरम साधन है। इस मार्ग पर चलने से प्रत्यक व्यक्ति अपने दुःखो का नाश कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इसलिए यह समस्त मार्गों में श्रेष्ठ माना गया है। आय

---

१ देख जैन आचार मेहता मोहनलाल पृ ५।

२ मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो। धम्मपद २७३।

अष्टांगिक मार्ग बुद्ध शासन में निश्चय ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अपने सर्वप्रथम प्रवचन (धम्मचक्कपवत्तनसुत्त) में भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को इसका उपदेश दिया था और मध्यमा प्रतिपदा के साथ इसकी एकात्मकता दिखाई थी। यही वह मार्ग है जिसे तथागत ने खोज निकाला। मध्यमा प्रतिपदारूपी आर्य अष्टांगिक मार्ग अरण धर्म है और वही ठीक मार्ग है। यह मार्ग आँख खोल देनेवाला है ज्ञान करा देनेवाला है। यह शासन अभिज्ञा बोध और निर्वाण की ओर ले जानेवाला है। भगवान ने कहा है कि निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही एक मार्ग है और दूसरा कोई मार्ग नहीं। इस मार्ग पर चलने से तुम दुःख का नाश करोगे।

सम्पूर्ण धम्मपद के अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म के अनुसार शील समाधि और प्रज्ञा ये तीन मुख्य साधन हैं। अष्टांगिक मार्ग इसी साधना त्रय का पल्लवित रूप है। बौद्धधर्म में आचार की प्रधानता है। तथागत निर्वाण के लिए तत्त्वज्ञान के जटिल मार्ग पर चलने की शिक्षा कभी नहीं देते प्रत्युत तत्त्वज्ञान के विषय प्रश्नों के उत्तर में वे मौनावलम्बन ही श्रेयस्कर समझते हैं। आचार पर ही उनका प्रधान बल है। यदि अष्टांगिक मार्ग का पालन किया जाय या आश्रय लिया जाय तो शान्ति अवश्य प्राप्त होगी। भगवान के उपदेश का यही सार है। मार्ग पर आरूढ़ होना अत्यन्त आवश्यक है। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—उद्योग तुम्हें करना होगा। उपदेश के श्रवणमात्र से दुःखनिरोध कथमपि नहीं होगा। उसके लिए आवश्यक है उद्योग करना। तथागत का कार्य तो केवल उपदेश देना है। उस पर चलना भिक्षुओं का कार्य है। उस आर्य अष्टांगिक मार्ग में आरूढ़ होकर ध्यान में रत होनेवाले व्यक्ति ही मार के बन्धन से मुक्त होते हैं अन्य पुरुष नहीं। इसलिए भिक्षु को तथागत के उपदिष्ट धर्म में उद्योगी हो सत्-अर्थ में अप्रमादी एवं आत्मसंयमी

---

१ अरणविभंगसुत्तन्त मज्झिमनिकाय ३।४।९।

२ धम्मचक्कपवत्तनसुत्त। संयुत्तनिकाय।

३ एसोवमग्गोनत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथमारस्सेत पमोहनं ॥
एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥

धम्मपद २७४ २७५।

४ तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥

वही २७६।

ही विहार करना चाहिए। इससे बढकर उद्योग तथा स्वावलम्बन की शिक्षा दूसरी कौन हो सकती है।

प्राय आर्य अष्टागिक मार्ग को तथागत के मूल उपदेशो में माना जाता है। श्रीमती रीज डविडस ने अष्टांगिक मार्ग को बद्ध की मूलदेशना का अग होने पर शका की है। अगुत्तरनिकाय के अष्टक निपात और दीघनिकाय के सगीति पर्यायसूत्र म आठ अग (सम्यग्दष्टि) आदि का उल्लेख न होने से इस मान्यता पर प्रश्नचिह्न खडा हो गया है। सम्भव ह कि आरम्भ म मध्यम मार्ग से अथ केवल दो अतियो का परिहार था और आठ अग बाद म जोड गय। लेकिन ये आठ अग ३७ बोधि पक्षीय धर्मों म भी गिनाये जाते हैं। कही-कही सप्ताङ्ग और दशाङ्ग मार्ग के रूप म भी इसका वर्णन पाया जाता है। इसलिए इसे मूल देशना से बहिभत नही किया जा सकता। इस स्थिति म अष्टागिक मार्ग को धमदेशना का मल भाग स्वीकार करने म कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

मध्यमा प्रतिपदा

भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट माग मध्यममाग या मध्यमा प्रतिपदा कहलाता है क्योंकि यह सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो दष्टियों से दोनो अन्तो का परिहार करता है। जो कहता है कि आत्मा ह वह शाश्वत दृष्टि से पूर्वान्त म अनुपतित होता है। जो कहता है कि आत्मा नही है वह उच्छद दृष्टि के दूसरे अन्त म अनपतित होता है। शाश्वत और उच्छेदवाद दोनो अन्तो का परिहार कर भगवान मध्यमा प्रतिपद (माग) का उपदेश करते हैं। इसी तरह एक अन्त काम-सुखानुयोग है दूसरा अन्त आत्मक्लमथानुयोग (शरीर को कठिन तप से पीडा देना) ह। भगवान दोनों अन्तों का परिहार करत हैं। भगवान कहते हैं कि देव और मनुष्य दो दृष्टियों से अनुगत रहते हैं। केवल चक्षष्मान ही यथाभत देखता है जब भव निरोध के लिए धम की देशना होती है तो उनका चित्त प्रसन्न नही होता। इस प्रकार वे इसी ओर रह जाते हैं। दूसर भव से जुगुप्सा कर विभव का अभिनन्दन करत हैं। वे मानते ह कि उच्छद ही शाश्वत और प्रणीत है। वे अतिधावन करत ह। चक्षष्मान भत को भतत देखता है। वह भत के विराग निरोध के लिए प्रतिपन्न होता है। यह मध्यममाग आय अष्टागिक माग ह। भगवान यह नही कहते कि मझ पर श्रद्धा रखकर बिना समझे ही मेरे

१ शाक्य रीज डविडस टी डब्ल्यू पृ ८९।

२ बौद्धधम के विकास का इतिहास प ११७।

३ अभिधम्मत्थसगहो पर हिन्दी प्रकाशिनी व्याख्या पृ ७८४।

४ देखें दीघनिकाय ३।२५२ प १९४ २९२ २४ ।

धम को मानो। भगवान् कहते हैं कि मेरा धर्म एहिपस्सिक और पच्चत्तं वेदितब्ब है। अर्थात् भगवान् सबको निमन्त्रण देते हैं कि आओ और देखो इस धम की परीक्षा करो।[1] प्रत्येक को अपने चित्त में उसका अनुभव करना होगा। यह ऐसा धम नही है कि एक माग की भावना करे और दूसरा फल का अधिगम करे। दूसरे के साक्षात्कार करने से इसका साक्षात्कार अपने को नही होता। इसलिए भगवान् कहते हैं कि हे भिक्षुओ तुम अपन लिए स्वय दीपक हो दूसरे की शरण मत जाओ।

आर्य अष्टांगिक मार्ग के प्रत्येक अग का विशिष्ट स्वरूप

१ सम्यक दृष्टि

दृष्टि का अथ ज्ञान है। सत्काय के लिए ज्ञान की भित्ति आवश्यक होती है। आचार और विचार का परस्पर सम्बन्ध नितान्त घनिष्ठ होता है। विचार की भित्ति पर ही आचार खडा होता है। इसलिए आचार-माग में सम्यक दृष्टि पहला अग मानी गई है। जो व्यक्ति अकुशल को तथा अकुशल मूल को जानता है कुशल तथा कुशल मूल को जानता है वही सम्यक दृष्टि से सम्पन्न माना जाता ह। सम्यग्दृष्टि के बिना शील और समाधि की प्राप्ति नही होती न ही बिना शील और समाधि के सम्यग्दृष्टि की। धम्मपद म कहा गया है कि जो दोषयुक्त काय को दोषयुक्त जानकर तथा दोषरहित काय को दोषरहित जानकर यथाथ धारण करते हैं व प्राणी सम्यक दृष्टि को धारण करके सद्गति को प्राप्त होत हैं। दुख दखसमुदय दखनिरोध और दखनिरोधगामिनी प्रतिपद इन चार आय सत्यों का यथाथ ज्ञान सम्यग्दष्टि है। सम्यग्दृष्टि के परिणामस्वरूप ही सदाचार की प्राप्ति होती है। धम्मपद में कहा गया है कि जो शील और सम्यक दर्शन से युक्त अर्थात सम्यक दष्टि से सम्पन्न धर्म मे स्थित सत्यवादी और अपने कार्यों को करनेवाला ह उसे लोग प्रिय बताते हैं।

---

१ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७५।

२ वही द्वितीय भाग पृ ८ ।

३ वज्ज-चवज्जतोनत्वा अवज्जन्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥

धम्मपद ३१९।

४ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३।

५ सील दस्सनसम्पन्न धम्मट्ठ सच्चवादिन।
अन्तनो कम्मकुब्बान तं जनो कुरुते पिय ॥

वही २१७।

सम्यग्दृष्टि कुशल-अकुशल का ज्ञाता होता है। वह अकुशल को छोड कुशल का उपार्जन करता है। कायिक वाचिक तथा मानसिक सभी कर्म दो प्रकार के होते हैं कुशल (भले) और अकुशल (बुरे)। इन दोनो को भलीभांति जानना सम्यक दृष्टि है। दीघनिकाय में इन कर्मों का विवरण इस प्रकार है—

	अकुशल	कुशल
कायकम	१ प्राणातिपात (हिंसा)	१ अ हिंसा
	२ अदत्तादान (चोरी)	२ अ चौर्य
	३ मिथ्याचार (व्यभिचार)	३ अ-व्यभिचार
	४ मृषावचन (झूठ)	४ सत्य बोलना
वाचिकम	५ पिशुन वचन (चुगली)	५ अ पिशुन वचन
	६ परुष वचन (कट वचन)	६ अ-कटुवचन
	७ सम्प्रलाप (बकवाद)	७ अ-सप्रलाप
	८ अभिध्या (लोभ)	८ अ-लोभ
मानसकम	९ व्यापाद (प्रतिहिंसा)	९ अ प्रतिहिंसा
	१ मिथ्यादष्टि	१ मिथ्या दृष्टि न होना।

२ सम्यक संकल्प

सक प का अथ दढ निश्चय ह। सकल्प के अनेक अथ हैं—इ छा इरादा विचार मनोरथ आदि। ठीक इच्छा या इरादा अथवा विचार ही सम्यक सक प है जिसका सम्ब ध चित्त के साथ रहता है। यह चित्त कुशल एव अकुशल दोनो दिशाओं म ही हो सकता ह। चित्त में पहले हिंसात्मक रागयुक्त विचार उठत है। जब ये अधिक बलवान होते हैं तब मिथ्या सक प कहलात हैं। इनका ही प्रतिपक्षी सम्यकसक प है। धम्मपद म कहा गया है कि जो असार को सार और सार को असार समझते है वे मिथ्या सकल्प में पड व्यक्ति सार को प्राप्त नही करते हैं। लेकिन जो असार को असार और सार को सार समझते हैं वे सम्यक सक प से युक्त यक्ति सार को प्राप्त करते हैं।

सम्यक सक प तीन प्रकार का होता है जि हें नष्क्रम्य अव्यापाद एव अवि हिंसा सकल्प कहा जाता है।

---

१ असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।
ते सार नाधिगच्छन्ति मिच्छासङकप्पगोचरा॥
सार च सारतो नत्वा असारञ्च असारतो।
ते सार अधिगच्छन्ति सम्मासङकप्पगोचरा॥

धम्मपद ११ १२।

सभी कुशल धर्मों से सप्रयुक्त वितक नष्क्रम्य सम्यक सकल्प हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि अव्यापाद एव अविहिंसा से अवशिष्ट निर्दुष्ट सभी वितक नैष्क्रम्य सम्यक सकल्प हैं।

व्यापाद शब्द का अथ हिंसा या परविनाश चिन्ता है इसका विपरीत भाव मत्री ही अव्यापाद है। इसलिए सभी प्राणियों के प्रति हिंसा से विरत होकर मैत्रीपूर्ण व्यापार करने का दृढ निश्चय ही अव्यापाद है। धम्मपद में कहा गया है कि इस ससार में वैर से वैर कभी शान्त नही होते अपितु अवैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं।

हिंसा से विरत होना या हिंसा के विचार का न होना ही अविहिंसा सम्यक-सकल्प है। धम्मपद में कहा गया है कि जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से मारता ह वह मरकर सख नही पाता और जो सख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से नही मारता है वह मरकर सुख पाता है।

३ सम्यक वाक

ठीक भाषण—झठ वचन और बकवास का त्याग सम्यक वचन कहे जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने सम्यक वचन का कथन निषधात्मक शैली से दिया है यथा मिथ्यावचन से विरति ही सम्यक वचन है।

---

१ अभिधम्मत्थसग्गहो पर हिन्दी प्रकाशिनी व्याख्या पृ ७५८। तुलनीय दीघ निकाय १।६३ प ५५ मज्झिमनिकाय १।२६७ प ३२८ सुत्तनिपात ४ ७ (पब्बज्जासुत्त)।

२ नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

धम्मपद गाथा-सख्या ५।

३ सुखकामानि भतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्चसोन लभते॥
सुखकामानि भूतानि यो दण्डन सुखं न हिंसा।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुख॥

वही १३१ १३२।

४ सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसहिता।
एक अत्थ पद सेय्यो य सुत्वा उपसम्मति॥

वही १ ।

४ सम्यक कर्मान्त

अष्टांगिक मार्ग का चौथा अंग सम्यक कर्मान्त है। मनुष्य की सदगति या दुर्गति का कारण उसका कर्म ही होता है। कर्म के ही कारण जीव इस लोक में सुख या दुःख भोगता है तथा परलोक में भी स्वर्ग या नरक का गामी बनता है। धम्मपद का कथन है कि असत्यवादी नरक में जाते हैं और वह मनुष्य भी जो किसी काम को करके भी नहीं किया ऐसा कहता है। दोनो प्रकार के नीच कर्म करनेवाले मनुष्य मरकर एक समान होते हैं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि सब प्रकार के बुरे कर्मों का परित्याग कर दे और पंचशील का आचरण करे।

दीघनिकाय में हिंसा चोरी और काम मिथ्याचार से विरत रहना सम्यक कर्मान्त बतलाया गया है। धम्मपद में कहा गया है कि जो धीर पुरुष काय वाणी और मन से संयत रहते हैं वास्तव में वे ही सुसंयमित हैं।

५ सम्यक आजीव

ठीक आजीविका। आर्य श्रावक मिथ्या आजीव (झूठी जीविका) को छोड़कर सम्यक आजीव से जीविका चलाता है। बिना जीविका के जीवन धारण करना कठिन है वस्तुतः असम्भव है। मानवमात्र को शरीर रक्षण के लिए कोई न कोई जीविका ग्रहण करनी ही पड़ती है। परन्तु यह जीविका अच्छी होनी चाहिए जिससे दूसरे प्राणियो को न तो किसी प्रकार का क्लेश पहुंचे और न उनकी हिंसा का अवसर आवे। भगवान बुद्ध ने उस समय की पाँच जीविकाओ को हिंसाप्रवण होने से अनुचित ठहराया है

१ हथियार का व्यापार
२ प्राणियो का व्यापार
३ मांस का व्यापार
४ शराब का रोजगार और
५ विष का व्यापार।

अभूतवादी निरयं उपेति यो वापि कत्वा न करोमि चाह।
उभो पि ते पेच्च समा भवन्ति निहीनकम्मा मनुजा परत्थ॥

धम्मपद गाथा-संख्या ३ ६।

२ धम्मपद २४६ २४७ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३।

३ दीघनिकाय २।३१२ पृ २३३।

४ कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता॥ धम्मपद गाथा संख्या २३४।

५ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३।

इस प्रकार के साधनों के माध्यम से जीविकोपार्जन करना हीन माना गया है। इनसे विरत होकर ऐसे कार्यों द्वारा जीविका उपाजन करना जिससे किसीकी हानि न हो सम्यक आजीविका है। जीविकोपाजन के साधनो में सवत्र निर्दोष ढग को ही श्रेष्ठ बताया गया है।

धम्मपद से प्रकट है कि जिस प्रकार भ्रमर विभिन्न पुष्पों पर आकर उनसे रस लेकर अपनी जीविका चलाता है उसी प्रकार भिक्ष गाँवों में विचरण करते हुए बिना किसी पर भारस्वरूप बने जीविकोपाजन करे।

६ सम्यक व्यायाम

ठीक प्रयत्न शोभन उद्योग। भिक्ष अनुत्पन्न पापों को न उत्पन्न होने देने के लिये इच्छा उत्पन्न करता है उनसे प्रयत्नपूवक अपने चित्त को रोकता है। इसी प्रकार वह उत्पन्न पापों के नाश और अनुत्पन्न सुकर्मों के उत्पाद के लिए इच्छा उत्पन्न करता है। उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति अ नाश बद्धि विपुलता एव पूर्णता के लिए इच्छा उत्पन्न करता है। यही सम्यक व्यायाम है। सत्कर्मों के करने की भावना करने के लिए प्रयत्न करत रहना चाहिए। इन्द्रियो पर सयम बरी भावनाओ को रोकने और अच्छी भावनाओ के उत्पाद के प्रयत्न और उत्पन्न अच्छी भावनाओं को कायम रखने के प्रयत्न य सम्यक व्यायाम हैं। बिना प्रयत्न किये चचल चित्त से शोभन भावनाय दूर भागती जाती ह और बरी भावनाय घर जमाया करती हैं। अत यह उद्योग आवश्यक है।

७ सम्यक स्मृति

स्मृति का अर्थ है जागरूकता। इस अग का विस्तृत वर्णन दीघनिकाय के महा सतिपटठानसुत्त में प्राप्त है। स्मृति प्रस्थान चार है—(१) कायानुपश्यना (२) वेदनानुपश्यना (३) चित्तानुपश्यना और (४) धर्मानुपश्यना। इन चारों स्मृति प्रस्थानो की भावना करने को सम्यक स्मृति कहते हैं।

स्मृति का अभ्यासी कायानुपश्यना का अभ्यास करते हुए इस शरीर को विश्लेषण द्वारा समझने का यत्न करता है। वह इसे जानन-पहचानने का यत्न करता

---

१ यथापि भमरो पुप्फ वण्णगन्ध अहेठय।
फलेति रसमादाय एव गाने मुनी चरे॥

धम्मपद गाथा-सख्या ४९

तुलनीय दशवैकालिक गाथा-सख्या २।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३ २३४।

३ वही २।३१३ पृ २३४ मज्झिमनिकाय १।५९ पृ ७७।

है कि यह काया अचिरस्थायी है। मृत्यु के पश्चात जब यह शरीर श्मशान म फेंक दिया जाता है तो फूलकर उवण हो जाता है। उसमें कीट हो जाते हैं जिसे काक शृगाल खाकर क्षत विक्षत कर देते हैं। स्मृतिभाव का अभ्यासी यह देखते-सोचते हुए कि वह श्मशान भमि में जो विवर्ण पतितकाय ह वही यह शरीर है अपन शरीर से आसक्ति का निवारण करता है। शरीर ग दगी की राशि है। जल के बुलबलो की तरह उत्पन्न विलीन होनवाला मृग मरीचिका के समान धोखा देनेवाला और क्षण भगुर है। स्मृति के द्वारा काया के प्रति ऐसे अभ्यास को कायानुपश्यना कहा जाता है। धम्मपद में कहा गया है कि जिन्ह नित्य कायगता-स्मृति उपस्थित रहती है वे अकर्तव्य को नही करते और कर्तव्य को निरन्तर करनेवाले होते हैं। ऐसे स्मृतिमान और बद्धिमानों के चित्तमल अर्थात् आस्रव अस्त हो जाते हैं।

वेदनानुपश्यना का अथ वेदनाओ के प्रति जागरूकता ह। यह वेदना पाँच प्रकार की होती ह—(१) सुखावेदना (२) सौमनस्यवेदना (३) दु खावेदना (४) दौर्मनस्यवेदना और (५) उपेक्षावेदना।

चित्तानुपश्यना का अर्थ चित्त के प्रति जागरूकता है। चित्त अनेक प्रकार क होते हैं यथा—सराग वीतराग सदोष वीतदोष समोह वीतमोह समाहित असमाहित चित्त आदि।

धर्मो के प्रति जागरूकता का नाम धर्मानुपश्यना ह। धम शब्द से यहाँ पाँच नीवरण (कामच्छन्द व्यापाद स्त्यानमृद्ध औद्ध य-कौकृत्य और विचिकित्सा) पाँच

---

१ यथा बढबलक पस्से यथापस्सेमरीचिक।
एव लोक अवक्खन्त म चराजानपस्सति॥

धम्मपद गाथा-सख्या १७ ।

२ य सन्च सुसमारद्धानिच्च कायगतासति।
अकिच्चन्ते न सेवन्ति किच्च सात च्चकारिनो।
सतान सम्पजानान अत्थ गच्छन्ति आसवा॥

वही २९३।

३ बौद्ध-दशन तथा अन्य भारतीय दशन भाग १ पृ ३६६।

४ बौद्ध-दशन-मीमांसा पृ ५८।

५ मातर पितर हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेयग्घपञ्चम हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो॥

धम्मपद २९५।

उपादान स्कन्ध (रूप वेदना सज्ञा संस्कार और विज्ञान) छह आभ्यन्तरिक और बाहरी आयतन। सात बोध्यग[3] एवं चार आय सत्यों का अर्थ ग्रहण किया गया है। इन धर्मों को उनके यथार्थरूप में जानना धर्मानुपश्यना है।

इस प्रकार ये चारों ही स्मृत्युपस्थान सत्त्वों की विशुद्धि का एकमात्र माग है। इनसे ही भिक्षु आत्मशरण और अनन्यशरण होकर विहार करता है। धम्मपद में कहा गया है कि स्मृतिमान लोग ध्यान विपश्यना आदि में लगे रहते हैं वे आलस्य में रत नहीं होते। जिस प्रकार हस जलाशय का परित्याग कर चले जाते हैं उसी प्रकार वे लोग गृहो को त्याग देते हैं।

८ सम्यक समाधि

समाधि चित्त की एकाग्रता के अथ में प्रयुक्त है। सम्यक समाधि का अर्थ है—ठीक समाधि यथाथ समाधि। समाधि से चित्त को एकाग्र किया जाता है चित्त का दमन किया जाता है क्योंकि एकमात्र चित्त के दमन से सभी दान्त हो जाते हैं। धम्मपद म इसीलिए कहा भी गया है कि चित्त का दमन करना अ छा है चित्त का दान्त होना सुखावह ह। चित्त कुशलाकुशल धर्मों म प्रवृत्त होता है। इसलिए भिक्षु कामवासनाओ से अलग हो बराइयो से अलग हो वितक और विचारयुक्त विवेक से उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है और इसी प्रकार

---

१ योचवस्स सतजीव अपस्स उदयब्बय।
एकाह जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बय॥

धम्मपद ११३।

२ चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा काय और मन—ये छ भीतरी आयतन हैं वैसे ही रूप शब्द गन्ध रस स्पश और धर्म—ये छ बाहरी।

३ स्मृति धम विचय वीय प्रीति प्रश्रब्धि समाधि और उपेक्षा।

४ दु ख द खसमुदय दु खनिरोध और द खनिरोधगामिनी प्रतिपद।

५ महासतिपट्ठान (दीघनिकाय २।९)।

६ उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते।
हसा व पल्लल हित्वा ओकमोक जहन्ति ते॥

धम्मपद ९१।

७ मज्झिमनिकाय १।३ १ पृ ३७१।

८ चित्तस्स दमन साधु चित्त दान्त सुखावह॥

धम्मपद ३५।

दिव्यज्ञान की अवस्था में है। यद्यपि उत्तराध्ययन में इनके स्वरूप आदि का विशेष विचार नहीं किया गया है तथापि इनके विषय में कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१ श्रुतज्ञान

इसका अर्थ है शब्दजन्य शास्त्रज्ञान। परन्तु सत्यश्रुतज्ञान वही है जो जिनोपदिष्ट प्रामाणिक शास्त्रों से होता है। जिनोपदिष्ट प्रामाणिक ग्रन्थ अग (प्रधान) और अगबाह्य (अप्रधान) के भेद से दो प्रकार के हैं। अत श्रुतज्ञान भी प्रथमत दो प्रकार का है। अग ग्रन्थों की सख्या बारह होने से अगश्रुतज्ञान भी बारह प्रकार का है तथा अगबाह्य ग्रन्थों की कोई सीमा नियत न होने से अनेक प्रकार का है। अग ग्रन्थों की प्रधानता होने से उत्तराध्ययन में समस्त श्रुतज्ञान को द्वादशाङ्ग का विस्तार कहा गया है। द्वादशाङ्ग के वेत्ता को ही बहुश्रुत कहा गया है तथा बहुश्रुत के महत्त्व को प्रकट करने के लिए सोलह दृष्टान्तों से उसकी प्रशसा की गयी है।

ये सभी दृष्टान्त साभिप्राय विशेषणों से युक्त हैं अत ग्रन्थ में श्रुतज्ञानी के कुछ अ य सहज गुण गिनाये गये हैं जो इन दृष्टान्तो से पुष्ट होते हैं जैसे — श्रतज्ञानी समुद्र की तरह गम्भीर प्रतिवादियों से अपराजेय अतिरस्कृत विस्तृत श्रतज्ञान से पूर्ण जीवों का रक्षक कर्म क्षयकर्ता उत्तम अर्थ की गवेषणा करनेवाला और स्व-पर को मुक्ति प्राप्त करानेवाला होता है। इसी तरह श्रतज्ञानी के अन्य अनेक गुण समझे जा सकते हैं। सत्यज्ञान की प्राप्ति में शास्त्रों का स्थान प्रमुख होने से श्रुतज्ञानी को बहुत प्रशंसा करके उसका फल मुक्ति बतलाया गया है।

---

१ उत्तराध्ययन २८।२१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २०९।

२ दुवाल संग जिणक्खाय। उत्तराध्ययन २४।२।
बारसगविऊ बुद्धे। वही २३।७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प २ ९।

३ जहा संखम्मिपय निहिय दुहओ वि विरायइ।

सुयस्सपुण्णा विउलस्स ताइणी खवित्तुकम्मं गइमुत्तम गया ॥
उत्तराध्ययन ११।१५-३१।

४ वही ११।३२ २९।२४ ५९ १०।१८ ३।१ २ तथा उत्तराध्ययन-सूत्र एक परिशीलन पृ २१ ।

५ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २१ ।

२ आभिनिबोधिकज्ञान

चक्षु आदि इन्द्रियों और मन की सहायता से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान आभि निबोधिक कहलाता है। जैन-दर्शन में इसका प्रचलित नाम मतिज्ञान है क्योंकि यह इन्द्रियादि की सहायता से होता है।

३ अवधिज्ञान

अवधि का अर्थ है सीमा। जो ज्ञान इन्द्रियादि की सहायता के बिना कुछ सीमा को लेकर अन्त साक्ष्यरूप होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है।

४ मन पर्यायज्ञान

दूसरो के मनोगत विचारों को जानने की शक्ति के कारण इसे मन पर्यायज्ञान कहा गया है। यह दिव्यज्ञान की दूसरी अवस्था है और अवधिज्ञान से श्रेष्ठ है।

५ केवलज्ञान

मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय से कैवल्यज्ञान प्रकट होता है। यह ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था है। इसीलिए उत्तराध्ययन में इसे अनुत्तर सर्वप्रधान सम्पूर्ण प्रतिपूर्ण आवरणरहित अन्धकाररहित विशुद्ध लोकालोक-प्रकाशक बतलाया गया है। इस ज्ञान को धारण करनेवाले को केवली केवलज्ञानी या सर्वज्ञ कहा गया है। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर जीव उसी प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार आकाश में सूर्य। इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर जीव शेष कर्मों को नष्ट करके नियम से मोक्ष जाता है।

---

१ जैन-धर्म-दर्शन महता मोहनलाल पृ १५७।

२ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २१२।

३ वही पृ २१२।

४ तओ पच्छा अणुत्तर अणत कसिण पडिपुण्ण निरावरण वितिमिर विसुद्ध लोगालोयप्पभावग केवल वरनाणदसण समुप्पाडेइ।

उत्तराध्ययन २९।७२।

५ उग्ग तव चरित्ताण जायादोण्णिवि केवली। वही २२।५।

६ सन्नाणनाणोवगए महेसी अणुत्तर चरिउ धम्मसचय।
अणुत्तरे नाणधरे जससी ओभासइ सूरिए वन्तलिक्खे।

वही २१।२३।

७ जाव सजोगी भवइ ताव य इरिया वहियकम्म बन्धइ सुहफरिस दुसमयठिइय। त पढमसमएबद्ध बिइय समए वेइय तइय समए निज्जिण। त बद्ध पुट्ठ उदीरियं वेइय निज्जिण्ण सेयालेय अकम्म चावि भवइ॥

वही २९।७२।

३ सम्यक चारित्र (सदाचार)

सम्यक् चारित्र का अर्थ है सदाचार। आचार व्यक्ति का वह मूल्य है जिसके द्वारा वह महान् से महान् और निम्न से भी निम्न बन सकता है। सदाचार व्यक्ति को नीचे से उच्च सिंहासन पर बैठा देता है और दुराचार उच्च सिंहासन से नीचे पर्त में ढकेल देता है। सम्यक दर्शन और सम्यक् ज्ञान होने पर भी यदि व्यक्ति में सदाचार नहीं है तो वह सम्यक् दर्शन और सम्यक ज्ञान निरर्थक है क्योंकि उनका प्रयोजन सदाचार में प्रवृत्ति कराना है। अत कहा गया है कि पढ़े हुए वेद व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकते हैं। प्रश्न उठता है कि सदाचार क्या है? यदि सदाचार को एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करना जैसा हम दूसरे से स्वय के प्रति चाहते हैं। सदाचार को उत्तराध्ययन में अहिंसा के रूप में उपस्थित किया गया है तथा इस अहिंसा के साथ सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और धन सम्पत्ति का त्याग (अपरिग्रह) इन चार अन्य आचारपरक नियमो को जोड़ा गया है। ये ही जैनधम के पाँच प्रसिद्ध व्रत हैं। शेष जितने भी नियम और उपनियम हैं वे सब इन पाँच व्रतों की ही पूर्णता एवं निर्दोषता के लिए हैं। ज्यो-ज्यों इन व्रतों के पालन से सदाचार में वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों व्यक्ति मुक्ति की ओर बढ़ता जाता ह। इसी प्रकार ज्यो-ज्यो वह मुक्ति की ओर अग्रसर होता जाता है त्यों-त्यों पूर्वबद्ध कम आत्मा से पृथक हो जाते हैं और ज्यों ज्यों पूर्वबद्ध कर्म आत्मा से पृथक होते जाते हैं त्यो-त्यों आत्मा निर्मल से निर्मलतर अवस्था को प्राप्त करती हुई मुक्ति को प्राप्त कर लेती है। चारित्र के पाँच प्रकार है —(१) सामायिक (२) छेदोपस्थापना (३) परिहार विशुद्धि (४) सूक्ष्मसम्पराय तथा (५) यथाख्यातचारित्र।

---

१ वेया अहीया न भवन्ति ताण। उत्तराध्ययन १४।१२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २२८।

पसुबन्धा सव्ववेयाजट्ठं च पावकम्मुणा।
न त तायन्ति दुस्सील कम्माणि बलवन्तिह ॥

उत्तराध्ययन २५।३०।

२ एयं चयरित्तकरं चारित्त होइ आहिय ॥

वही २८।३३।

तथा—चरित्तमायारगुणन्निए तओ अणुत्तर संजम पालियाणं।
निरासवे संखवियाणकम्मं उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥

वही २०।५२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ० २२९।

३ सामाइयत्थपढमं छेओवट्ठावणं भवेबीयं।
परिहार विसुद्धीयं सुहुमं तह संपरायं च ॥

४ तप

उत्तराध्ययन में कहीं कहीं चारित्र से पृथक जो तप का वणन मिलता है वह उसके महत्त्व को प्रकट करने के लिए किया गया है। तप एक प्रकार की अग्नि है जिसके द्वारा सैकडो भावो के सञ्चित पर्व कर्मों को शीघ्र ही जलाया जा सकता है। ग्रन्थ म कषायरूपी शत्रुओं के आक्रमण पर विजय प्राप्त करने के लिए तप को बाण एवं अर्गलारूप बतलाया गया है। अत कभी-कभी तप को चारित्र से पृथक बतलाया गया है अन्यथा वह चारित्र से पृथक नहीं है क्योंकि इसमें जो तप का वणन मिलता है वह साधु के आचार का ही अभिन्न अग है और साधु के आचार से सम्बन्धित कुछ क्रियाओ को ही यहाँ तप के रूप म बतलाया गया ह। आत्मसयम जो कि चारित्र की आधारशिला है तप उससे पृथक नहीं है।

तप को बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से सवप्रथम दो भागो म विभाजित किया गया है और फिर बाह्य तप और आभ्यन्तर तप को पुन छ-छ भागों म विभक्त किया गया है। इस तरह कुल मिलाकर १२ प्रकार के तपों का वणन ग्रन्थ म है। उन १२ प्रकार के तपो के क्रमश नाम है—(१) अनशन (२) ऊनोदरी (३) भिक्षाचर्या (४) रस-परित्याग (५) कायक्लेश (६) सलीनता या विविक्त शयनासन (७) प्रायश्चित्त (८) विनय (९) वैयावृत्य (१) स्वाध्याय (११) ध्यान और (१२) व्युत्सग या कायोत्सग। उपयक्त म प्रथम छ तप बाह्य शरीर की क्रिया से अधिक सम्बन्धित होन के कारण बाह्य तप कहलाते हैं तथा अन्तिम छ तप आत्मा से अधिक सम्बन्धित होने के कारण आभ्यन्तर तप कहलात हैं। बाह्य तपो का प्रयोजन आभ्यन्तर तपो को पुष्ट करना है। अत प्रधानता आभ्यन्तर तपो की ह। बाह्य तप मात्र आभ्यन्तर तपों की ओर ले जाने म सहायक हैं।

इस प्रकार सम्यग्दशन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र तथा तप आत्मविकास की क्रमिक सीढ़ियाँ हैं मोक्षमाग के साधन हैं क्योंकि इनके द्वारा क्रम क्रम से आत्म विकास होता जाता है कषाय एव कम क्षीण होते जात हैं स्वानुभूति की परिधि का विस्तार होता जाता है तथा अन्त म एक ऐसी अवस्था आती ह जब साधक मोक्ष

अकसाय अहक्खाय छउमत्थस्स जिणस्वा।
एय चयरित्तकर चारित्त होइ आहिय॥
उत्तराध्ययन २८।३२ ३३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २३ ।

१ वही ९।२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३२९ ३ ।

२ उत्तराध्ययन ३ ।७८ २९ ३ २८।३४ १९।८९ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ ३३१।

का अधिकारी बन जाता है। जिस प्रकार किसी कार्य की सफलता के लिए इच्छा ज्ञान और प्रयत्न इन तीन बातों का सयोग आवश्यक होता है उसी प्रकार संसार के दु खों से मुक्ति पाने के लिए भी विश्वास ज्ञान और सदाचार के संयोग की आवश्यकता होती है जिसे ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के नाम से कहा गया है। ये तीनों बौद्ध-दर्शन के शील समाधि और प्रज्ञा की तरह अलग-अलग मुक्ति के तीन मार्ग नही हैं बल्कि तीनो मिलकर एक ही मार्ग रत्नत्रय का निर्माण करते हैं। यद्यपि ग्रन्थ में कहीं-कहीं ज्ञान के पहले चारित्र का तथा दर्शन के पहले ज्ञान व चारित्र का भी प्रयोग मिलता है परन्तु इनकी उत्पत्ति क्रमश होती है।

उत्तराध्ययनसूत्र म तो सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन सम्यक चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया गया है।[1] लेकिन जैन-आचार्यों ने सम्यक चारित्र म तप का अन्तर्भाव कर दिया है जिसके कारण परवर्ती साहित्य में त्रिविध साधना-मार्ग का ही विधान किया गया है। इस तरह विश्वास ज्ञान और सदाचार ही मुक्ति के प्रधान साधन हैं। ये तीनों मिलकर एक ही मार्ग का निर्माण करते हैं क्योंकि मुक्ति में साक्षात कारण चारित्र की पूर्णता मानी गयी है तथा चारित्र की पूर्णता बिना दर्शन और ज्ञान के सम्भव नहीं है। ये तीनो कारण जैन-दर्शन में रत्नत्रय के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1]

बौद्ध-दर्शन में त्रिविध साधना मार्ग के रूप में शील समाधि और प्रज्ञा का विधान है। कहीं-कहीं शील समाधि और प्रज्ञा के स्थान पर वीर्य श्रद्धा और प्रज्ञा का भी विधान है। वस्तुत वीर्य शील का और श्रद्धा समाधि का प्रतीक है। श्रद्धा और समाधि दोनो इसलिए समान हैं क्योंकि दोनों म चित्त विकल्प नही होते हैं। इस

---

१ नाण च दंसण चेव चरित्तं च तवोतहा।
एस मग्गुत्तिपन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

उत्तराध्ययन २८।२।

२ नाण च दसणं चेव चरित्तं चेव निच्छए ॥
वही २३।३३ तथा जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २१।

३ भारतीय दर्शन राधाकृष्णन् एस पृ ३२५।

४ देख जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प २३।

५ सुत्तनिपात १।२२ तुलनीय धम्मपद ५७ २२१ २३ तथा जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ २१–२३।

आधार पर समाधि या श्रद्धा की तुलना सम्यक दर्शन से और प्रज्ञा की तुलना सम्यक ज्ञान से की जा सकती है। ऊपर उल्लेख किया गया है कि अष्टांग मार्ग के सम्यक-वाचा सम्यक-कर्मान्त और सम्यक आजीव का अन्तर्भाव शील में सम्यक व्यायाम सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि का चित्त श्रद्धा या समाधि में और सम्यक संकल्प तथा सम्यक दृष्टि का प्रज्ञा में होता है। यह भी लक्षित होता है कि जहाँ उत्तराध्ययन के सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान बौद्धो के क्रमश समाधि और प्रज्ञा स्कन्ध में आते हैं वहीं बौद्धों का शील स्कन्ध उत्तराध्ययनसूत्र के सम्यक चारित्र में सरलता से अन्तभूत हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध और जैन-परम्पराए न केवल अपने साधन मार्ग के प्रतिपादन म बल्कि साधनत्रय के विषय में भी एक समान दृष्टिकोण रखती हैं।

पचशील

सदाचार बौद्धधम की आधारशिला हैं। बौद्धधम में सदाचार को शील कहा जाता है। शील का पालन प्रत्यक बौद्धो के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति शीलों का पालन नहीं करता वह अपने को बौद्ध कहन का अधिकारी नही समझा जाता। शील से मन वाणी और काया ठीक होते हैं। सद्गुणो के धारण या शीलन के कारण ही उसे शील कहा जाता है। सक्षेप म शील का अर्थ है सब पापो का न करना पुण्य का सचय तथा अपन चित्त को परिशुद्धि रखना। बौद्ध त्रिशरण के अटल विश्वासी का शील ही मूलधन तथा शील ही मूल सबल है। इसलिए बौद्ध-सदाचार म आडम्बर को बिल्कुल स्थान नही दिया गया ह। भगवान् ने कहा है कि जिसम आकाक्षाएँ बनी हुई हैं वह चाहे नगा रह चाहे जटा बढाए चाहे कीचड लपेट चाहे उपवास करे चाहे जमीन पर सोय चाहे धल लपेटे और चाह उकडूँ बठे पर उसकी शुद्धि नही आती। असली शुद्धि तो शील-पालन से होती ह। धम्मपद म शीलवान् व्यक्ति के गुणों को बतलाते हुए तथागत न कहा है— पुष्प चन्दन तगर या चमेली किसीकी भी सुगन्ध

---

१ सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
स-चित्त परियोदपन एत बुद्धान सासन ॥ धम्मपद १८३।

२ न नग्गचरिया न जटा न पङ्का।
नानासकाथण्डिलसायिका वा।
रजो वजल्ल उक्कुटिकप्पधान।
सोधेन्ति मच्च अवितिण्णकङ्ख ॥

धम्मपद १४१ तुलनीय उत्तराध्ययन ५।२१।

उल्टी हवा नहीं जाती किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी हवा भी जाती है सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है ।[1] चन्दन या तगर कमल या जूही इन सभी सुगन्धों से शील की सुगन्ध उत्तम है । तगर और चन्दन की जो गन्ध फैलती है वह अल्पमात्र है । किन्तु जो शीलवानों की गन्ध है वह देवताओं तक में फैलती है । जो वे शीलवान् निरालस हो विहरनेवाले यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गये हैं उनके मार्ग को मार नहीं पाता । शील के भौतिक लाभ चाहे जो भी हों पर उसका मुख्य लाभ आध्यात्मिक है । शीलवान् के मन में जो आत्मस्थिरता या आत्मशक्ति होती है वह दु:शील को सुलभ नहीं । शील सम्पूर्ण मानसिक ताप को शान्त कर देता है । अशान्त पुरुष सदा यही सोचा करते हैं कि उसने मुझे गाली दी मुझे मारा मुझे हराया मुझे लूट लिया । इस तरह सोचते-सोचते लोग अपने हृदय में वैररूपी आग जलाते रहते हैं ।[2] वैर का मूल कारण दु:शीलता ही है । वैराग्नि का शमन शील से ही हो सकता है । जो व्यक्ति शीलों का पालन नहीं करता दुराचारी हो अनेक प्रकार के पापकर्मों में ही लगा रहता है वह मानवता से च्युत समझा जाता है । उसकी दुर्गति होती है और वह जब तक सदाचारी नहीं बनता है तब तक निर्वाण-सुख को नहीं प्राप्त कर सकता । उसका जीवन निस्सार और हेय माना जाता है । भगवान् बुद्ध ने कहा है कि असंयमी और दुराचारी हो राष्ट्र का अन्न खाने से आग की लपट के समान तप्त लोहे का गोला खा लेना उत्तम है ।[3] इस प्रकार सदाचार के महत्त्व को जानते हुए सदाचारी बनने का प्रयत्न करना चाहिए ।

---

१ न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरमल्लिका वा सतञ्च गन्धो पटिवातमेति
सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ।। धम्मपद ५४ ।

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथवस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ।। वही ५५ ।

अप्पमत्तो अयं गन्धो या च यो च सीलवतं गन्धो-तगरचन्दनी ।
वाति देवेसु उत्तमो ।। वही ५६ ।

तेसं सम्पन्न सीलानं अप्पमाद विहारिनं ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ।। वही ५७ ।

२ अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ।।

वही ३ ।

३ सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ।।

वही, ३०८ ।

जब कोई व्यक्ति बौद्धधर्म ग्रहण करता है तब उसे बुद्ध धर्म और संघ की शरण जाने के साथ ही पचशील के पालन की प्रतिज्ञा करनी पडती है। पचशील सदाचार के पाँच सार्वभौम नियम हैं। वे इस प्रकार है —

१ प्राणातिपात अर्थात् जीव हिंसा से विरति
२ मुसावाद या असत्य भाषण से विरति
३ अदिन्नादान या चोरी से विरति
४ परदारन्च या परस्त्रीगमन से विरति और
५ सुरामेरयपानन्च अर्थात मद्यपान से विरति।

जो व्यक्ति इनका पालन करता है उसका आचरण पवित्र माना जाता ह। पंचशील का आरम्भ होता ह पानाति पाता वेरमणि से जिसका तात्पय है हिंसा से विरत रहना और कर्म तथा वाणी को सयमित रखना।

चूंकि पचशील आचार के नैतिक नियम निर्धारित करते हैं अत इन्ह शिक्षा पद भी कहत हैं। क्योंकि ये गृहस्थमात्र के लिए आचरणीय ठहराय गय है इसलिए इन्हें गृहस्थशील भी कहत हैं।

सामान्य जन के लिए नित्य आचरणीय होने के कारण इनको नित्यशील भी कहते हैं। और क्योंकि पवित्र गुणसम्पन्न आय जन इसका अनुपालन करते हैं इसे आयकण्ठ भी कहा गया ह। नीच किञ्चित विस्तार से पचशीलो म प्रत्येक का विवेचन किया गया है।

१ प्राणातिपात विरमण

अर्थात् अन्य जीवो की हिंसा से विरत रहना। जो व्यक्ति अन्य जीवों की हिंसा से नितान्त बचा रहता है वह मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है। प्राणातिपात में प्राण और अतिपात दो शब्द हैं। प्राण शब्द से जीव का बोध होता है और अतिपात का अर्थ शीघ्रता से गिरना अर्थात स-वों के प्राणो का अतिशीघ्रता से या पृथक

---

१ यो पाणमतिपातति मुसावादन्च भासति।
लोके अदिन्न आदियति परदारन्च गच्छति॥
सुरामरयपानन्च यो नरो अनुयुन्जति।
इधवमसा लोकस्मि मल खनतिअत्तनो॥

धम्मपद २४६ २४७

तथा—

अगुत्तरनिकाय ८।२५ बौद्धधर्म-र्शन प २४।

होता है ।[1] इस प्रकार प्राणातिपात का अर्थ प्राणियों की हिंसा से है । मनुष्य पशु पक्षी या अन्य उद्भिज्जजीव जो प्राण से उपेत हैं उनका वध ही प्राण-वध है । हिंसा का विरोध सभी धर्मों में किया गया है । धम्मपद में कहा गया है कि जहाँ-जहाँ से मन हिंसा से मुड़ता है वहाँ-वहाँ से दु ख अवश्य ही शान्त हो जाता है ।

२ अदत्तादान विरमण

अर्थात् दूसरो की सम्पत्ति के अपहरण से दूर रहना । वह व्यक्ति जो पर-सम्पत्ति के अपहरण से नितान्त दूर रहता है मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है । बौद्ध और जैन दोनों परम्पराएँ इस मत से सहमत हैं कि भिक्षु को अपने स्वामी की अनुमति के बिना कोई भी वस्तु ग्रहण नही करनी चाहिए । विनयपिटक के अनुसार जो भिक्षु बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करता है वह अपने श्रमण-जीवन से च्युत हो जाता है । सयुत्तनिकाय में कहा गया है कि यदि भिक्षु फल को सँघता है तो भी चोरी करता है ।

३ कामेसु मिच्याचार विरमण

अर्थात कामाचार से विरत रहना । जो व्यक्ति दृढ़तापूवक कामाचार से विरत रहता है वह मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है । बौद्ध एव जैन दोनों परम्पराओं में श्रमण के लिए परस्त्रीगमन वर्जित है । विनयपिटक के अनुसार स्त्री का स्पर्श भी भिक्ष के लिए वर्जित माना गया है । बुद्ध ने भी इस सन्दभ में काफी सतर्कता बरतने का उपदेश दिया । यही कारण है कि बुद्ध ने स्त्रियों को सघ में प्रवेश देने में अनुत्सुकता प्रकट की । अपने अन्तिम उपदेश मे भी बुद्ध ने भिक्षओं को स्त्री-सम्पक से सावधान किया है । भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पहले आनन्द न भगवान् से प्रश्न किया

---

१ अटठसालिनी ३।१४३ पृ ८ तथा देख विभग पृ ३८४ अर्थविनिश्चय-सूत्र पृ ३६ ।

२ यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो सम्मति एव दुक्ख । धम्मपद ३९ ।

३ विनयपिटक पातिमोक्ख पराजिकधम्म २ तथा देख अटठसालिनी ३।१४४ प ८१ विभग पृ ८४ ।

४ सयुत्तनिकाय ९।१४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ३४४ ।

५ विनयपिटक पातिमोक्ख संघादिसेस धम्म २ ।

६ बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ १५०-१५१ ।

ा है क्योंकि प्रमाद से विवेकज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है और जब तक विवेक न नहीं होगा तब तक अहिंसा का पालन करना सम्भव नहीं है। उत्तराध्ययन में हिंसा-व्रत के पालन करनेवाले को ब्राह्मण कहा गया है तथा इनके पालन न करने फल नरक की प्राप्ति बतलाया गया है। इस प्रकार इस व्रत का स्थान पचमहाव्रतों प्रथम और श्रेष्ठ है।

सत्य महाव्रत

द्वितीय महाव्रत सर्व-मृषा-वाद विरमण है। क्योंकि असत्य भाषण आत्मा लिए पतन का कारण और प्राणातिपात का पोषक है जिससे अनेक दोषो का जन्म व पापकर्म का बन्ध होता है इसलिए श्रमण को प्रमाद क्रोध लोभ हास्य एव य से झठ न बोलकर उपयोगपूर्वक हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिए यही सत्य हाव्रत ह। असभ्य वचन जो दूसरे को कष्टकर हो ऐसा भी नही बोलना ाहिए। इसम भी अहिंसा महाव्रत की तरह कृतकारित अनुमोदना एव मन वचन ाय से झूठ न बोलने का अथ सन्निविष्ट है। अच्छा भोजन बना है अच्छी तरह से काया गया है इत्यादि प्रकार के सावद्य वचन तथा आज मैं यह कार्य अवश्य कर लूंगा अवश्य ही ऐसा होगा इस प्रकार की निश्चयात्मक वाणीबोलने का भी ग्रन्थ में निषेध । सत्य-महाव्रत के पालन करने को भी उत्तराध्ययन में कठिन बतलाया गया है।

---

१ समय गोयम। मापमायए। उत्तराध्ययन १ वाँ अध्ययन तथा ६।१३ ४।६–८ २।२२ २१।१४ १५ २६।२२ आदि।

खिप्प न सक्केइ विवगमेउ तम्हा समुट्ठाय पहायकाम।
समिच्च लोय समया महेसी अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो।। वही ४।१।

२ तसपाण वियाणत्ता सगहेण यथावरे।
जो न हिंसइ विविहण त वय बम माहण।। वही २५।२३।

३ कोहा वाजइ वाहासालोहा वाजइ वा भया।
मुस न वयइ जो उत वय बम माहण।। वही २५।२४ तथा
उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६४ तथा आगे।

४ वयजोग सुच्चा न असबममाहु। उत्तराध्ययन २१।२४।

५ मुस परिहरे भिक्खनय ओहारिणिं बए।
भासा दोसं परिहरे मायं च वज्जए सया।।
वही १।२४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६५।
सुणिटिठए सुलटठेत्ति सावज्ज वज्जए मुणी।। उत्तराध्ययन १।३६।

६ निच्चकाल प्पमत्तण मुसावाय विवज्जण।
भासियव्व हियं सच्च निच्चा उत्तेण दुक्कर।। वही १९।२७।

उत्तराध्ययन में वचन बोलने की क्रमिक तीन अवस्थायें बतलायी गयी हैं।[1] इन तीनो अवस्थाओं म सत्य बोलन के क्रमश नाम भाव स"य करण सत्य और योग सत्य मिलते हैं। इस तरह झठ बोलनेवाला एक झठ को छिपाने के लिए अ"य अनेक झूठ बोलता है और हिंसा चोरी आदि क्रियाओं में प्रवृत्त होता हुआ सुखी नही होता है। सत्य बोलनेवाला जसा बोलता ह वसा ही करता है और प्रामाणिक पुरुष होकर सुखी होता है।

३ अचौर्य-महाव्रत

तृतीय महाव्रत की सज्ञा सव अदत्तादान विरमण है जिसके अन्तर्गत श्रमण कोई भी बिना दी हुई वस्तु ग्रहण नही करता। किसीकी गिरी हुई भूली हुई रखी हुई अथवा तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु को बिना स्वामी का आज्ञा के ग्रहण न करना अचौर्य महाव्रत है। मन वचन शरीर एव कृतकारित अनुमोदना से इस व्रत का पालन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जो वस्तु ग्रहण करे वह निरवद्य एव निर्दोष हो। अहिंसा-व्रत की रक्षा के लिए निरवद्य एव निर्दोष विशेषण दिया गया है क्योंकि

---

१ सरम्भ-समारम्भे आरम्भे य तहेवय।
वय पवत्त माण तु नियतज्जजय जई ॥ उत्तराध्ययन २४।२३।

२ भावसच्चेण भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे जीव अरहन्तपन्न-त्तस्स धम्मस्स आराहणमाए अ"भुटठइ। अरहन्तपन्न-त्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अ"भुटिठता परलोग धम्मस्स आराहएहवइ। वही २९।५१।
करणसच्चेण करण सत्ति जणयइ। करणसच्चे वटटमाणे जीवे जहावाई तहा कारी यावि भवइ। वही २९।५२।
जोगसच्चेण जोगं विसोहेइ। वही २९।५३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६५।

३ मोसस्स पच्छा यपुरत्थओ य पओगकाले य दुही दुरन्ते।
एव अदत्ताणि समाययन्तो रुवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥
उत्तराध्ययन ३२।३१।

४ दन्त-सोहण माइस्स अदत्तस्स विवज्जण।
अणवज्जे सणिज्जस्स गण्हणा अ"वदक्करं ॥
वही १९।२८।

चित्तमन्तमचित्त वा अप्प वाजइ वा बहु।
न गण्हइ अदत्त जे त वय बम माहणं ॥
वही २५।२५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६७।

सावद्य एवं सदोष वस्तु के ग्रहण करने में हिंसा का दोष लगता है। सभी सचित्त वस्तुओं को ग्रहण करना साधु के लिए निषेध माना गया है। इसलिए सचित्त वस्तु के किसीके द्वारा दिये जाने पर भी उसे ग्रहण करना चोरी है। बतलाये गये व्रतों का ठीक से पालन न करना भी चोरी है। अचौर्य-व्रत से युक्त बहुत ही सुन्दर कथन उत्तराध्ययन में कहा गया है—धनधान्यादि का ग्रहण करना यह नरक का हेतु है। इसलिए बिना आज्ञा के साधु तृणमात्र पदार्थ को भी अंगीकार न करे। यह शरीर बिना आहार के रह भी नहीं सकता। इसलिए गृहस्थ के द्वारा अपने पात्र में जो भोजन उसे प्राप्त हो उसीका आहार करना चाहिए।

४ ब्रह्मचर्य-महाव्रत

कृत कारित अनुमोदनापूर्वक मनुष्य तियञ्च एवं देव शरीर-सम्बन्धी सब प्रकार के मैथुन-सेवन का मन वचन काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य-महाव्रत है। इसके १८ भेदों का संकेत मिलता है।

समाधिस्थान

उत्तराध्ययनसूत्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए १ विशेष बातों का त्याग आवश्यक बतलाया गया है जिन्हें ग्रन्थ में समाधिस्थान का नाम दिया गया है। इन दस समाधिस्थानों में अन्तिम संग्रहात्मक समाधिस्थान को छोड़कर शेष ९ को टीकाकारों ने ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ (संरक्षिका) कहा है। चित्त को एकाग्र करने के लिए इनका विशेष महत्त्व होने के कारण इन्हें समाधिस्थान कहा गया है। ये समाधिस्थान डॉ सुदर्शनलाल जैन के द्वारा निम्नलिखित रूप में विभाजित हैं

---

१ आयाण नरयं दिस्स नायएज्ज तणामवि।
दो गुन्छी अप्पणो पाए दिन्नं भुंजेज्ज ॥ उत्तराध्ययन ६।८।

२ दिव्व-माणुस तेरिच्छं जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केण तं वयं बम माहू ॥ वही २५।२६।

३ बम्भम्मिनायज्झयणेसु ठाणेसु यऽसमाहिए।
जे भिक्खू जयई निच्चं से न अच्छइ मण्डले ॥ वही ३१।१४।

४ कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेर समाहिठाणा पन्नता जे भिक्खू सोच्चा निसम्म सजम बहुले सवर बहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्तिन्दिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा। वही १६।२ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ २६८।

५ उत्तराध्ययन ३१ १ तथा उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ १३९१।

६ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६८–२७३।

१ स्त्री आदि से संकीर्ण स्थान के सेवन का त्याग

जहाँ पर स्त्री पशु नपसक आदि का आवागमन सम्भव है ऐसे स्थानों में शून्य घरो में और जहाँ पर घरो की सन्धियाँ मिलती हो ऐसे स्थलों म तथा राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के परिचय म न आवे। क्योकि इन उपर्यक्त स्थानों में साधु का स्त्री के साथ परिचय म आना जनता म अवश्य सन्देह का कारण बन जाता है। इसलिए इन उक्त स्थानो म सयमी पुरुष कभी न आवे। क्योकि जैसे बिल्लियों के स्थान के पास चहो का रहना योग्य नही उसी प्रकार स्त्रियो के स्थान के समीप ब्रह्मचारी को निवास करना उचित नही। इसलिए मुनि को भी स्त्री पशु आदि से रहित एकान्त स्थान म ही निवास करना उपयक्त ह।

२ निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की कामजनक कथा न कहे

साध का स्त्रियो की बार-बार कथा नही करनी चाहिए और ब्रह्मचय म रत भिक्ष को मन को आनन्द देनेवाली कामराग को बढानेवाली स्त्री-कथा को भी त्याग देना चाहिए।

३ स्त्री आदि से युक्त शय्या और आसन का त्याग

निग्रन्थ को ब्रह्मचय की रक्षा के लिए स्त्रियो के साथ एक आसन पर बैठकर कथा वार्तालाप परिचय आदि न करते हुए आकीर्णता और स्त्री-जन से रहित स्थान म रहना चाहिए। क्योकि तत्काल वहाँ पर बठने से स्मृति आदि दोष लगने की सम्भावना रहती है।

४ कामराग से स्त्रियों की मनोहर तथा मनोरम इन्द्रियों का त्याग

ब्रह्मचारी भिक्ष को स्त्रियो के अग-प्रत्यग और सस्थान आदि का निरीक्षण करना तथा उनके साथ सुचारु भाषण करना और कटाक्षपूवक देखना आदि बातों को एव चक्षग्राह्य विषयों को त्यागने के लिए कहा गया है। अत इस प्रकार के प्रसग

---

१ उत्तराध्ययन १६।१ पद्य भाग तथा १६।१ गद्य तथा ३२।१३ १६ ८।१९ २२।४५ १।२६।

२ वही ३२।१३।

३ वही ३६।१६।

४ वही १६।२ पद्य तथा गद्य।

५ तम्हा खलु नो निग्गन्थे इत्थीहिंसद्धिं सन्निसेजागए विहरेज्जा। वही १६।५ गद्य।

६ वही १६।५ गद्य।

पस्थित होने पर वीतरागतापूर्वक शुभध्यान करना। स्त्रियों के रूप सौन्दर्य को लकर पुरुष को उसमें आसक्ति नहीं होनी चाहिए। इसीलिए ग्रन्थ में स्त्रियों को ङ्कभूत (दलदल) तथा राक्षसी कहा गया है।

। स्त्रियों के श्रोत्रग्राह्य शब्दों का निषेध

पंचम समाधिस्थान में स्त्रियों के कूजित रुदित हसित स्तनित क्रन्दित बलाप आदि वचनों को जिनसे कामराग बढ़े न सुनना कारण कि इससे मन की चलता में वृद्धि होती है और ब्रह्मचर्य में आघात पहुँचता है।

स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति और काम-क्रीड़ा का स्मरण न करें

स्त्रियों के पूर्वरति और क्रीडा की स्मृति करनेवाले निग्रन्थ ब्रह्मचारी के ह्मचर्य में शंका कांक्षा और सन्देहादि दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है यम का नाश एवं उन्माद की प्राप्ति होती है तथा दीर्घकालिक भयकर रोगों का ाक्रमण भी होता है।

७ सरस आहार-पानी तथा प्रणीत रस-प्रकाम का त्याग

ग्रन्थ में ब्रह्मचारी के लिए रसों का अत्यन्त सेवन वर्जित है। कहा गया है कि जैसे स्वादु फलवाले वृक्ष पर पक्षी आकर बैठते हैं और अनेक प्रकार से उसको कष्ट पहुँचाते हैं उसी प्रकार रससेवी (घी दूध आदि रसवान् द्रव्यों के सेवन से) पुरुष को कामादि विषय भी अत्यन्त दुःखी करते हैं।

अत्यधिक भोजन का त्याग

जैसे वायु के साथ मिलन से वन में लगी हुई अग्नि शीघ्र शान्त नहीं होती उसी प्रकार प्रमाण से अधिक भोजन करनेवाले ब्रह्मचारी की इन्द्रियाग्नि शान्त नहीं होती। अतः खाने से यदि विकार की उत्पत्ति विशेष होती हो तो उसको त्यागकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए।

---

१ उत्तराध्ययन ३२।१५।

२ पङ्क भूयाओ इत्थिओ। वही २।१७ ८।१८।

३ वही १६।५ गद्य तथा पद्य।

४ वही १६।८ गद्य तथा पद्य और आगे ३२।१४।

५ वही ३२।१ ।

६ वही ३२।११।

७ वही २६।३५।

९ शरीर की विभूषा का त्याग

ब्रह्मचय म अनुराग रखनेवाले साध को शरीर की विभूषा का त्याग करना चाहिए। अत उसे उत्तम सस्कार करना शरीर का मण्डन करना केश आदि का सँवारना छोड देना चाहिए।

१ शब्दादि पाँचों प्रकार के कामगुणों का त्याग

ब्रह्मचय की रक्षा के लिए इस दसवें समाधिस्थान में ब्रह्मचारी को शब्द रूप गन्ध रस और स्पश इन पाँच कामगुणो का सदा परित्याग करने के लिए कहा गया है क्योंकि वे सब आ मगवेषी पुरुष के लिए तालपुट विष के समान हैं। इसलिए एकाग्र मनवाले साधु को समाधि की दढ़ता के लिए इन दुजय कामभोगों तथा शका के स्थानो को छोड देना चाहिए।

इस प्रकार सम्यकतया काया से स्पश करने से सर्वथा मैथुन से निवृत्तिरूप चतुथ महाव्रत का आराधन एव पालन होता है और देव दानव गन्धव यक्ष राक्षस एव किन्नर य सभी ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं क्योकि वह दुष्कर ब्रह्मचय का पालन करता है।

५ अपरिग्रह-महाव्रत

धन धान्य भृत्य आदि जितन भी निर्जीव एव सजीव पदाथ हैं उन सबका मन वचन काय से निर्मोही होकर ममत्व का त्याग करना अपरिग्रह या अकिञ्चन महाव्रत कहलाता ह। अत साधु किसी खाद्य पदाथ का अशमात्र भी सग्रह न करे तथा चतुर्विध आहार म से किसी आहार का भी सग्रह करके रात्रि को न रख। वह सोने-चाँदी आदि को ग्रहण करने की मन से भी इच्छा न करे। इस तरह सभी प्रकार के धन धा यादि का त्याग करके तृणमात्र का भी सग्रह न करना अपरिग्रह है। अपरिग्रह को ही वीतरागता कहा गया है क्योकि जब तक विषयों से विराग नहीं होगा तब

१ उत्तराध्ययन १६।९ पद्य तथा गद्य।

२ वही १६।१ पद्य तथा गद्य।
विसतालउडजहा। वही १६।१३ गद्य।

३ सकटठाणाणि सव्वाणि वज्जेज्जा पणि हाणव। वही १६।१४ पद्य।

४ वही १६।१६ पद्य।

५ वही १९।३ तथा आगे उ २५।२७ ८।४ १२।९ १४।४१ ४९ २१।२१ २५।२८ ३५।३ १९ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २७८।

६ उत्तराध्ययन ६।१६ तथा ३५।१३।

तक जीव अपरिग्रही नहीं हो सकता है। विषयों के प्रति राग या लोभ-बुद्धि का होना ही परिग्रह है। उत्तराध्ययन में कहा गया है जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ होता है तथा लोभ के बढ़ने पर परिग्रह भी बढ़ता जाता है। यह वीतरागता अति विस्तृत सुस्पष्ट राजमार्ग है जिसके समक्ष अज्ञानमूलक जप-तप आदि सोलहवीं कला को भी पा नही सकता है।[1] जो इन विषयो के प्रति ममत्व नहीं रखता है वह इस लोक में दुःखो से अलिप्त होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करता ह तथा परलोक में देव या मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। परन्तु जो परिग्रह का त्याग नहीं करता ह वह पाप कर्मों को करके ससार में भ्रमण करता हुआ नरक में जाता है।

इस तरह अपरिग्रह से तात्पर्य यद्यपि पूर्ण वीतरागता से है परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत को इससे पृथक कर देने के कारण यह धन धान्यादि अचेतन द्रव्य और दास पशु आदि सचेतन द्रव्यों के त्यागरूप रह गया ह।

पंचमहाव्रत श्रमण-जीवन की रीढ़ तथा जैनधम के प्राण हैं। इन व्रतों का सम्यक पालन करनेवाला ही सच्चा श्रमण है। श्रमण धर्माचार मूलत अहिंसाप्रधान है इसलिए कहा जाता है कि पाँचों महाव्रत अहिंसास्वरूप हैं और वे अहिंसा से भिन्न नही हैं। रात्रि भोजन विरमण-व्रत भी अहिंसा-महाव्रत के अन्तगत ही आ जाता है फिर भी धर्माचार्यों ने इसे छठ व्रत के रूप में प्रतिपादित किया है। अशन पान खाद्य और स्वाद्य इन चार प्रकारों में किसी एक प्रकार का भी रात्रि में ग्रहण करना गर्हित समझा गया है।

इस प्रकार धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर उपयुक्त तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि पचशील पचमहाव्रतो एव रात्रि भोजन निषध के अत्यन्त निकट हैं। दोनो परम्परायें उपर्युक्त कार्यों का मन वचन और काय तथा कृत कारित और अनुमोदित की कोटियो का विधान करती हैं। फिर भी दोनो ग्रन्थों में कुछ मौलिक अन्तर है जिसे जानना जरूरी है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार

---

१ उत्तराध्ययन १ ।३२।

२ वही १ ।३२।

३ कल अग्घइ सोलसि ॥ वही ९।४४।

४ वही २९।२ ३८ ३२।१९ २६ ३९ १४।४४ ४।१२ ८।४ ६।५ ७।२६ २७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २८ ।

५ आयाण नरय दिस्स। उत्तराध्ययन ६।८।

६ मेहता मोहनलाल जैनधर्म-दर्शन पृ ५१४।

७ जैन सागरमल जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २११।

भिक्षु न केवल कृत कारित और अनुमोदित हिंसा से बचते हैं वरन् वे औद्देशिक हिंसा से भी बचते हैं। जैन भिक्ष के लिए मन वचन और काय से हिंसा करना-करवाना अथवा हिंसा का अनुमोदन करना तो निषिद्ध ह ही लेकिन साथ ही यदि कोई भिक्ष के निमित्त से भी हिंसा करता है और भिक्ष को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके निमित्त से हिंसा की गई है तो एसे आहार आदि का ग्रहण भी भिक्ष के लिए निषिद्ध माना गया ह। फिर भी बौद्ध और जैन-परम्परा म प्रमुख अन्तर यह है कि बुद्ध निमन्त्रित भिक्षा को स्वीकार करते थे जब कि जन श्रमण किसी भी प्रकार का आमन्त्रण स्वीकार नही करत थे। बुद्ध औद्दशिक प्राणीवध के द्वारा निमित्त मास आदि को तो निषिद्ध मानते थे लेकिन सामान्य भोजन के सम्बन्ध म व औद्दशिकता का कोई विचार नही करत थ। वस्तुत इसका मूल कारण यह था कि बुद्ध अग्नि पानी आदि को जीवन यक्त नही मानते थे। अत सामान्य भोजन के निर्माण म उन्हें औद्देशिक हिंसा का कोई दोष परिलक्षित नही हुआ और इसलिए निमन्त्रित भोजन का निषध नही किया गया। सत्य महाव्रत के सन्दभ म दोनो परम्पराओ म मौलिक अन्तर यह ह कि बद्ध अप्रिय सत्य वचन को हित बद्धि से बोलना वर्जित नही मानत है जब कि जन-परम्परा अप्रिय सत्य को भी हित बद्धि से बोलना वर्जित मानती है। अन्य शीलो के सम्बन्ध म सद्धान्तिक रूप से बौद्ध और जैन-परम्परा म कोई मलभत अन्तर नही है फिर भी जैन-परम्परा म अशीलो का पालन जितनी निष्ठा और कठोरतापूवक किया गया उतना बौद्ध परम्परा म नही।

धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसत्र के आधार पर पुण्य पाप की अवधारणा

पुण्य मनुष्य के चरित्र की श्रेष्ठता का सूचक है। इसके विपरीत पाप चरित्र के नतिक पतन का चिह्न है। इच्छापूवक कतव्य पालन अथवा सत्कम से मनुष्य के चरित्र के नतिक उत्कष म वृद्धि ही पुण्य हैं। नतिक नियमो के उल्लघन अथवा असत्कम से व्यक्ति के चरित्र से सम्बद्ध नतिक मूल्य का क्षय ही पाप है। पुण्य कतव्य पालन करके अर्जित नतिक योग्यता ह। जब यक्ति कतव्य से मँह मोडता है तब उसकी नैतिक योग्यता का ह्रास होता ह। नतिक योग्यता के इस क्षय को पाप कहा जाता ह। धम्मपद में कहा गया ह पाप काय का न करना श्रेष्ठ है। पाप-काय पीछे दुख देता ह पुण्य-काय करना श्रेष्ठ है जिसे करके मनुष्य दुखी नही होता। पुण्य और पाप चरित्र से सम्बद्ध हैं। पुण्य भावात्मक नतिक योग्यता है जब कि पाप

---

१ नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक अध्ययन गुलाम मुहम्मद याह्या खाँ पृ ५८।

२ अकत दुक्कत सेय्यो पच्छातपतिदुक्कत।
कतञ्च सुकत सेय्यो य कत्वा नानुतप्पति॥ धम्मपद ३१४।

निषेधात्मक । पाप पुण्य का अभाव नहीं है । पुण्य के अभाव का अर्थ है कि व्यक्ति ने जो कर्म किया है वह न सत् है और न असत् । जब व्यक्ति का आचरण नैतिक आदर्श के अनुकूल होता है तब वह पुण्य होता है किन्तु जब नैतिक आदर्श के प्रतिकूल होता है तब पाप होता है । धम्मपद का कथन है कि जिसका किया हुआ पापकर्म पुण्यकर्म से ढक जाता है वह इस लोक को वैसे ही प्रकाशित करता है जैसे कि बादलों से निकला हुआ चन्द्रमा । अत पुण्य चरित्र के उत्कर्ष का तथा पाप से चरित्र के क्षय का सकेत मिलता है ।

पुण्य और पाप की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं । व्यक्ति के नैतिक और अनैतिक कर्म के अनुपात में ही उसकी नैतिक योग्यता की वृद्धि अथवा उसका क्षय होता है । व्यक्ति की नैतिक योग्यता की वृद्धि जब अधिक होती है तब वह अधिक पुण्य अर्जित करता है । इसके विपरीत व्यक्ति की नैतिक योग्यता में ह्रास भी होता है जिससे पाप की मात्राओ का सकेत मिलता है । धम्मपद में कहा गया है कि पापकर्म करनेवाला इस लोक में दु खी होता है और परलोक में जाकर भी अर्थात् वह दोनों ही लोको में दु खी होता है । वह अपने कुत्सित कर्म को देखकर शोक करता है और दु खित होता है जब कि पुण्यकर्म करनेवाला इस लोक में प्रसन्न रहता है और परलोक में जाकर भी अर्थात वह दोनो लोको में आनन्दित होता है और प्रमोद करता है ।

धम्मपद भी नैतिक साधना की अन्तिम अवस्था में पुण्य और पाप दोनो से ऊपर की बात कहता है और इस प्रकार वह भी समान विचारो का प्रतिपादन करता है । धम्मपद में भगवान बुद्ध कहते हैं कि यदि मनुष्य पाप करता है तो उसे बार-बार न करे उस पाप में स्वच्छन्दतापूर्वक रत न होवे क्योंकि पाप का सचय दु ख कारी होता है । वह राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मूर्ख को जलाता हुआ उसका पीछा करता है । इसलिए मनुष्य कल्याणकारी कार्य करने के लिए शीघ्रता करे और पाप से चित्त को निवारण करे क्योंकि पाप का सचय दु खकारी लेकिन पुण्य का

१ धम्मपद गाथा-सख्या १७३ ।

२ वही १५ १७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३३६ ।

३ वही १६ १८ ।

४ वही ११७ ।

५ वही ७१ ।

में भी विस्तार से ब्राह्मण की कर्मानुसारी परिभाषा है। और उस ग्रन्थ में जैन दृष्टिकोण से उत्तम यज्ञ की कल्पना की गयी है जिनमें जंगम और स्थावर जीवों की बलि दी जाती है उन्हें श्रौत द्रव्य यज्ञ कहते हैं। जैसे अश्वमेध वाजपेय ज्योतिष्टोम आदि। ये यज्ञ बहुत खर्चीले पड़ते थे अत साधारण जनता इन यज्ञों को नहीं कर सकती थी। स्मृति से प्रतिपादित यज्ञो को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। दोनों का विधान अलग-अलग है। दोनो म मुख्य भेद बलि की प्रथा को लेकर है। स्मार्तयज्ञों में बलिदान को जीव हिंसा समझकर निषिद्ध कम माना गया है। इनमें हिंसा नहीं होती है अपितु इनका सम्पादन घत धान्य आदि से होता है। इन यज्ञों में याजक की भावना हिंसा करने की नही रहती है फिर भी जो स्थावर जीवो की हिंसा इस यज्ञ की व्यवस्था में होती है वह नगण्य है। अत इन यज्ञों का विरोध नही किया गया है। भावयज्ञ को उत्तराध्ययन में सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। इस यज्ञ के सम्पादन में बाह्य किसी सामग्री की आवश्यकता नही पडती है। कोई भी इस यज्ञ को कर सकता है। उत्तराध्ययन में इस यज्ञ के विभिन्न नाम हैं जो अपनी सार्थकता लिए हुए हैं जैसे—यमयज्ञ अहिंसा यज्ञ सत्य अचौर्य ब्रह्मचय और आकिञ्चनभाव। अज्ञानमूलक पशु-हिंसा-प्रधान

---

१ देखिए धम्मपद का छब्बीसवाँ ब्राह्मणवग्ग तथा उत्तराध्ययन का पचीसवाँ यज्ञीय प्रकरण। विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में आगे किया गया है।

२ वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जईय
अन्न पभय भवयाणमेय ॥ उत्तराध्ययन १२।१ तथा
जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४९५ ४९६।

३ अच्चेमुते महाभाग।
न ते किंचि न अच्चिमो।
भुजाहि सालिम कूर
नाणावजण-सजुयं ॥ उत्तराध्ययन १२।३४।

४ सुसवुडो पचहिं संवरेहिं
इह जीवियं अणवक खमाणो।
वोसटठकाओ सुइचत्तदेहो।
महाजय जयई जन्नसिटठ ॥ वही १२।४२।

५ जायाई जम जन्नमि। वही २५।१।

६ वही १२वाँ एव २५वाँ अध्ययन।

७ उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ ११२१–११२५ तक।

धीर तथा उसीको सच्चा ब्राह्मण कहा गया है। जैसे कमल कीचड से उत्पन्न होकर जल के ऊपर ठहरता है और जल के द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता हुआ भी जल से उपलिप्त नहीं होता है ठीक इसी प्रकार जो कामभोगों से उत्पन्न और वृद्धि को प्राप्त करके भी उनमें उपलिप्त नही होता उसीको सच्चा ब्राह्मण कहा गया है।

इस प्रकार मूल गुणो के द्वारा ब्राह्मणत्व का निरूपण किया गया। अब उत्तर गुणों से भी उसका वणन किया जा रहा है। लोलुपता से रहित अर्थात् रसों में मूर्च्छा न रखनेवाला भिक्षावृत्ति से जीवन-यात्रा चलानेवाला गृह और मठादि से रहित द्रव्यादि का परित्यागी और गृहस्थों से अधिक परिचय न रखनेवाला आचार सम्बन्धी इन आचरणीय गुणो से युक्त व्यक्ति को ही ब्राह्मण कहा गया है। केवल सिर मुडा लेने से कोई व्यक्ति श्रमण नहीं बन सकता जब तक उसमें श्रमणोचित गुण विद्यमान न हो और न ही कोई पुरुष मात्र ॐकार अर्थात ॐ भूर्भुव स्व इत्यादि गायत्री मन्त्र के उच्चारण कर लेने मात्र से ब्राह्मण हो सकता है। अपितु ब्राह्मणोचित गुणों का धारण करना आवश्यक ह। इसी प्रकार केवल वन में निवास कर लेने मात्र से मुनि और वल्कल आदि के पहन लेने से कोई तपस्वी भी नही हो सकता। तात्पर्य यह है कि ये सब बाहरी आडम्बर तो केवल पहचान के लिए ही हैं। इनसे काय सिद्धि का कोई सम्बन्ध नही। कार्य सिद्धि का सम्बन्ध तो अन्तरग साधनो से ही है। राग द्वेष आदि से अलग होकर जिसके आत्मा म समभाव की परिणति हो रही हो वह श्रमण है। इसी प्रकार मन वचन और शरीर से ब्रह्मचय को धारण करनेवाला ब्राह्मण कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान से मुनि होता है अर्थात जो तत्त्व विद्या में निष्णात हो वह मुनि है। इसी भाँति तप का आचरण करनेवाला तापस है। इच्छा के निरोध को तप कहते हैं अर्थात् जिसने इच्छाओं का निरोध कर दिया ह वह तपस्वी है। इस प्रकार देखा जाता है कि गुणों से ही पुरुष श्रमण ब्राह्मण मुनि और तपस्वी हो सकता है न कि बाहर के केवल वेषमात्र से। इस प्रकार इन धर्मों के आराधन से यह जीव स्नातक हो जाता है और कर्मों के बन्धन से सवथा मक्त हो जाता है।

---

१ धम्मपद ४१८ उत्तराध्ययन २५।२६।

२ धम्मपद ४ १ उत्तराध्ययन २५।२७।

३ धम्मपद ४ ४ उत्तराध्ययन २५।२८।

४ धम्मपद २६४ २६६ २६८ २७ ३९३ उत्तराध्ययन २५।३१।

५ धम्मपद २६५ २६९ उत्तराध्ययन २५।३२।

६ जैनमत म स्नातक नाम केवली का है और बौद्ध-मत में बुद्ध को स्नातक माना गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ ११३३।

बौद्धधर्म में चित्त का संयम

जो कुशल या अकुशल धर्मों का सचय करता है उसे चित्त कहते हैं। चित्त को भगवान बुद्ध ने सबसे अधिक सूक्ष्म तत्त्व माना है। उनका कथन है कि मन सभी प्रवृत्तियो का अगुआ है मन उसका प्रधान है वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या काम करता है तो दु:ख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि चक्का-गाडी खीचनेवाले बैलो के पैर का। जिस प्रकार मन के ऊपर सयम रखना चाहिए उसी प्रकार सभी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। जो स्वच्छ मन से भाषण एव आचरण करता है सुख उसका उसी प्रकार अनुगमन करता ह जिस प्रकार कभी साथ न छोडनेवाली छाया।[1] धम्मपद में कहा गया ह कि वर से वर कभी शात नही होते[2] अतएव द्रोह व वैर का सवथा परित्याग करके मत्री की भावना मन म रखकर शत्रु से भी अवैर व्यवहार करना चाहिए। मन क सब प्रकार के दोष या मल को धो डालना चाहिए। ध्यान भावना का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए क्योकि उसके अभाव म मन में राग घुस जाता है। प्रमाद को त्यागकर राग द्वेष और मोह को छोडकर अनासक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

जन-दशन में मन का सयम

डॉ सागरमल जैन का कथन है कि जन-दशन में मन मुक्ति के माग का प्रवेश-द्वार है। वहाँ केवल समनस्क प्राणी ही इस मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं। अमनस्क प्राणियो को तो इस राजमाग पर चलने का अधिकार ही प्राप्त नहीं है। सम्यग्दष्टि केवल समनस्क प्राणियो को ही प्राप्त हो सकती है और वे ही अपनी साधना के द्वारा मोक्षमाग की ओर बढने के अधिकारी हैं। सम्यग्दशन को प्राप्त करने के लिए तीव्रतम क्रोधादि आवेगो का सयमन आवश्यक है क्योकि मन के द्वारा ही आवेगों का संयमन सम्भव है। इसीलिए कहा गया ह कि सम्यग्दशन की प्राप्ति के लिए की जानवाली ग्रन्थ भेद की प्रक्रिया में यथाप्रवृत्तिकरण तब होता है जब मन का योग होता है।[3]

---

१ मनो पुब्बङ्गमाधम्मा मनोसेटठा मनोमया।

ततो न सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी॥

धम्मपद १ २ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८१।

२ न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन। धम्मपद ५।

३ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८२।

रहती है। फिर व्यक्ति प्रमादवाले नीचे के गुणस्थानो में आ जाता है। प्रमाद पाँच प्रकार का बतलाया गया है। कही ८ व १५ का भी। प्रमाद के पाँच प्रकार हैं — मद्य विषय कषाय निद्रा और विकथा।

१ मद्य

आसक्ति भी आ मचतना को कुण्ठित करती ह इसलिए प्रमाद कही जाती है।

२ विषय

पाँचो इ द्रियो के विषयो का सेवन।

३ कषाय

क्रोध मान माया और लोभ य चार प्रमख मनोदशाए जो अपनी तीव्रता और म दता के आधार पर १६ प्रकार की हाती हैं कषाय कही जाती है। इन कषायो के जनक हास्यादि प्रकार के मनोभाव उपकषाय है। कषाय और उपकषाय के भेद मिलकर २५ होते ह।

४ निद्रा

अधिक निद्रा लेना निद्रा समय का अनुपयोग ह।

५ विकथा

जीवन के साध्य और उसके साधना माग पर विचार न करत हुए अनावश्यक चर्चा करना। विकथाए चार प्रकार की —(१) रा य-सम्बन्धी (२) भोजन सम्ब धी (३) स्त्रियो के रूप सौन्दय सम्ब धी और (४) देश-सम्ब धी। इस तरह प्रमाद के अ तगत विषय और कषाय को स मलित कर लेन से कमब ध का वह मख्य कारण बन जाता ह। इसलिए प्रमाद से बच रहन और अप्रमत्त साधना करने का विधान किया गया है। अप्रमत्त अर्थात जागरूकता आ मजागरण और प्रमाद अर्थात् आ म विस्मृति बेभान और आलस्य की अवस्था। आ मो नति के लिए सबसे पहले जागरूकता की आवश्यकता होती ह। महावीर का जीवन अप्रमत्त था। वे सतत आत्म-जागरण मे लीन रहते थे।

उत्तराध्ययनसूत्र म समय मात्र भी प्रमाद न करन का जा महान् सन्देश भगवान् महावीर ने दिया ह वह साधको के लिए पुन पुन स्मरणीय है। इस ग्रन्थ के दसव

---

१ उत्तराध्ययन नियक्ति १८ ।

२ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३६१।

वही।

अथवा जिससे जीव पुन -पुन जन्म-मरण के चक्र में पडता है वह कषाय है। सम्पूर्ण संसार वासना से उत्पन्न कषाय की अग्नि म जल रहा है। इसलिए शान्ति मार्ग के कर्णधार साधक के लिए कषाय का त्याग आवश्यक है। जैन-ग्रन्थों में साधक को कषायो से सवथा दूर रहने के लिए कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि साधु को अपना मन क्रोध मान माया और लोभ में कभी नही लगाना चाहिए क्योकि शब्दादि गुणस्पर्शों के यही कारण हैं। अगर इन चारो पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो शब्दादि मोहगुणो का आत्मा पर कोई प्रभाव नही पडता। ये शब्दादि गुण तो उन आत्माओ के लिए कष्टप्रद या आवश्यक होत हैं जिनके लिए उक्त चारो कषाय उदय में आये हुए हों। अत इन चारो कषायो पर विजय प्राप्त कर लेन से मोह के गुणों पर सहज में ही विजय-लाभ हो सकता ह और इन पर विजय प्राप्त करने का सहज उपाय यह है कि इनके प्रति किसी प्रकार का राग-द्वषमूलक क्षोभ नही करना चाहिए। राग और द्वेष य दो ही मुख्य कषाय हैं। क्रोधादि चारो कषाय इन्ही दो के अन्तगत हैं एव माया और लोभ का राग में अन्तर्भाव है अत इनको जीत लेने से मोह के सभी गुण और क्रोधादि सभी कषाय सुतरा ही पराजित हो जाते हैं। इसलिए ग्रन्थ म कहा गया है कि इन कषायो के परित्याग से इस जीवात्मा को वीतरागता की प्राप्ति होती है अर्थात कषायमुक्त जीव राग द्वेष से रहित हो जाता है। राग-द्वष से मुक्त होन के कारण उसको सुख और दु ख म भद भाव की प्रतीति नही होती अर्थात सुख की प्राप्ति होने पर उनको हृष नही होता और दु ख म वह किसी प्रकार के उद्वग का अनुभव नही करता किन्तु सुख और दु ख दोनों का वह समान बुद्धि से आदर करता है। तात्पय यह ह कि उसके आत्मा म समभाव की परिणति होने लगती है। समभाव से भावित हो जाना ही कषाय-त्याग का फल है।

कषाय कमबन्ध का चौथा कारण ह। प्राणीमात्र के प्रति समभाव का अभाव या राग द्वेष को कषाय कहा जाता है। इसी समभाव के अभाव एव राग-द्वेष से उत्पन्न होने के कारण क्रोध मान माया और लोभ को भी कषाय कहा जाता है।

---

१ अभिधान राजेन्द्र कोश खण्ड ३ प ३९५ उद्धत जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४९९।

२ रक्खज्जकोह विणएज्ज माण माय न सेवे पयहेज्जलोह।

उत्तराध्ययन ४।१२।

३ कसायपच्चक्खाणण वीयरागभाव जणयइ।
वीयरागभावपडिवन्ने ति यण जीवे समसुहदुक्खे भवइ॥

वही २९।३७।

कषाय चार प्रकार के होते है—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्याना वरण एव सज्वलन। जिस कषाय के प्रभाव से जीव को अनन्त काल तक भव भ्रमण करना पडता है उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से देशविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नही होता उसे अप्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नही होता उसे प्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिम कषाय के उत्पन्न होन पर साधक अल्प समय के लिए मात्र अभिभत होता है उसे सज्वलन कषाय कहत हैं। चार प्रकार के कषायों म हर एक के चार विभाग होने से कुल १६ विभाग होते है। इसके अतिरिक्त उपकषाय या कषायप्ररक भी माने गये हैं जिनकी सख्या ७ या ९ ह—हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा (घणा) और वद (स्त्री पुरुष और नपसकलिङग)। वेद को स्त्री विषयक मानसिक विकार पुरुष विषयक मानसिक विकार तथा उभय विषयक मानसिक विकार के भेद से तीन भद कर देन पर नो-कषाय के ९ भद हो जाते हैं।

उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार उक्त १६ कषाय और ९ नो-कषाय का सम्बन्ध सीघा व्यक्ति के चरित्र से ह। नतिक जीवन के लिए इन वास ाओ एव आवगो से ऊपर उठना आवश्यक ह क्योंकि जब तक यक्ति इनसे ऊपर नही उठगा तब तक वह नतिक प्रगति नही कर सकता। जन ग्र थो म इन चार प्रमुख कषायो को चडाल चोकडी कहा गया है। इसम अन तानुब धी आदि जा विभाग ह उनको सदव घ्यान म रखना चाहिए और हमशा यह प्रयत्न करना चाहिए कि कषायो म तीव्रता न आय क्योंकि अन तानुब धी क्रोध मान माया और लोभ के होन पर साधक अनन्त काल

१ कमग्र थ १।३५ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ५ १। जनधम दर्शन प ४६५।

२ सोलसविहभएण कम्म तु कसायज।
सत्तविह नवविह वा कम्म च नोकसायज॥
उत्तराध्ययन ३३।११।

३ वही ३३।११ टीका आ माराम ने प १५३४ पर इसके विषय म निम्न गाथा उदघृत की है—
कषायसहवर्तित्वात् कषायप्ररणादपि।
हास्या दिनवक स्योला नोकषायकषायत॥

४ जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ ६।

फँसाये रखती है जिस प्रकार मकडी अपने ही जाल बुनती है और अपने ही उसीमें बँधी रहती है । वे लोग तष्णा से नाना प्रकार के विषयो मे राग उत्पन्न करते हैं और इन्ही राग के बन्धन म जो उनके ही द्वारा उत्पन्न किये हुए हैं अपने को बाँधकर दिन रात बन्धन का कष्ट उठाते हैं । इसलिए ज्ञानी पुरुष उस बन्धन को जो नीचे की तरफ ले जानेवाला है और खोलने म कठिन है मजबत कहते हैं । ऐसे बन्धन को काट देने के बाद मनुष्य चिन्ताओ से मुक्त हो इच्छाओ और भोगो को पीछे छोड ससार को त्याग देत ह । ससार के प्राणी तीन प्रकार की तृष्णाओ में फसे हुए हैं—

१ कामतृष्णा

जो तृष्णा नाना प्रकार के विषयो की कामना करती है ।

२ भवतष्णा

भव—ससार या जन्म । इस ससार की स्थिति बनाय रखनवाली यही तष्णा है । इस ससार की स्थिति के कारण हमी हैं । हमारी तृष्णा ही इस ससार को उत्पन्न किए हुए ह । ससार के रहन पर ही हमारी सुखवासना चरिताथ होती है । अत इस ससार की तृष्णा भी तृष्णा का ही एक प्रकार है ।

३ विभवतष्णा

विभव का अथ है उच्छद ससार का नाश । ससार के नाश की इच्छा उसी प्रकार दु ख उत्पन्न करती है जिस प्रकार उसके शाश्वत होने की अभिलाषा ।

यही तृष्णा जगत के समस्त विद्रोह तथा विरोध की जननी है । इसीके कारण राजा राजा से लडता है क्षत्रिय क्षत्रिय से ब्राह्मण ब्राह्मण से माता पुत्र से और लडका भी माता से आदि । समस्त पापकर्मों का निदान यही तष्णा है । चोर इसीलिए चोरी करता है कामुक इसीके लिए परस्त्री-गमन करता है धनी इसीके लिए गरीबों को चसता है । यह ससार तृष्णामलक ह । तृष्णा ही दु ख का कारण है । तृष्णा का समुच्छेद करना प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है । भगवान बुद्ध कहते हैं कि तृष्णा के नष्ट हो जाने पर सभी बन्धन अपने-आप नष्ट हो जाते हैं । तृष्णा दुष्पूर्ण है । वे कहते हैं

---

१ ये रागरत्तानुपतन्ति सोत सय कत मक्कट कोवजाल ।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा अनपेक्खिनो सब्ब दुक्ख पहाय ॥

धम्मपद ३४७ ।

२ वही ३४६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३६ ।

३ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३ –३३ ।

विषय है। सुगन्ध राग का कारण है। रस को रसनेन्द्रिय ग्रहण करती है और रस रसनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। मनपसन्द रस राग का कारण और मन के प्रति कलस्स द्वेष का कारण है। स्पर्श को शरीर ग्रहण करता है और स्पर्श स्पर्शनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। सुखद स्पर्श राग का तथा दु खद स्पर्श द्वेष का कारण है।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों को देखने से पता चलता है कि स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत होकर हाथी रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर भ्रमर चक्षु-इन्द्रिय के वशीभत होकर पतगा और श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभत होकर हिरण मृत्यु का ग्रास बनता है। जब एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्ति मृत्यु का कारण बनती है तो फिर पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन में आसक्त मनुष्य की क्या गति होगी? वास्तव में इन्द्रिय-दमन का अर्थ विषयो से मुँह मोडना नही बल्कि विषयों के मूल में सन्नद्ध रागात्मक भावनाओ को समाप्त करना ह। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन दोनो ग्रन्थों में किया गया है। ●

---

१ उत्तराध्ययन ३२।४९ तथा ३२।५ ५३ ५४ ५८।
२ वही ३२।६२ तथा ३२।६३ ७१ ७२।
३ वही ३२।७२ तथा ३२।७६ ८ ८७ ९४।
४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४७२।

अध्याय ६

धम्मपद मे प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री तथा उसका उत्तराध्ययन मे प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री से समानता और विभिन्नता

धम्मपद में प्रतिपादित सामाजिक एव सांस्कृतिक सामग्री

धम्मपद म यद्यपि वर्णव्यवस्था का सद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत नही किया गया है तथापि उसकी गाथाओ से स्पष्ट ह कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था चार वर्णों और उससे सम्बद्ध अनकानक जातियो के रूप म ही थी। ब्राह्मण के लक्षणो की विवचना के लिए ब्राह्मणवग का एक अध्याय ही धम्मपद म मिलता है। हिन्दू धमशास्त्रो के अनुसार ब्राह्मणो के काय थे—अध्ययन-अध्यापन यजन याजन दान और प्रतिग्रह किन्तु इन्हें मलत एक आदश के रूप म ही मानना चाहिए। समचे ब्राह्मणवग की एक थोडी-सी सख्या ही इस आदर्श तक पहुच पाती थी और अनेक ब्राह्मण कृषि राजकाय आदि म लग थ। धम्मपद म हम पूरा एक अध्याय ही ब्राह्मण बनानेवाले गुणो के वर्णन के रूप म देखत हं। बुद्ध को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होन जन्मना-जाति के सिद्धान्त पर कठोर आघात किया तथा चरित्र कम और गुण को महत्त्व प्रदान करते हुए ही किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार करने का उपदेश दिया। बुद्ध न उसीको सच्चा ब्राह्मण माना जो तप ब्रह्मचय सयम और इन्द्रिय दमन जैसे गुणो से युक्त हो। क्षत्रिय और वश्य शब्द का धम्मपद म सीधे उल्लेख दृष्टिगोचर नही होता। धमसूत्रो म जैसे वैश्यो और शूद्रो के ब्राह्मण और क्षत्रियों की भाँति अलग अलग वर्णों के रूप म उल्लेख मिलत हैं उस रूप म शूद्रो का धम्मपद में कोई उल्लेख नही है। किन्तु साधारणतया धम्मपद म एसी अनेक हीन जातियो का

---

१ अगुत्तरनिकाय पचकनिपात द्वितीय पण्णासक प्रथमवग सातवाँ सूत्र।

२ धम्मपद छब्बीसवा ब्राह्मणवग्ग तुलनीय—सुत्तनिपात वासेटठसुत्त प १६५–१७१।

३ उदक हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजन।
दारु नमयन्ति तच्छका अत्तान दमयन्ति पण्डिता॥

धम्मपद गाथा-सख्या ८०।

उल्लेख है जिन्हें कम्मकर अथवा वक्कस कहा गया है और जिन्हें शूद्र-वर्ग का ही समझा जाता है। वस्तुत विभिन्न शिल्पगत कार्यों को करनेवाले अनेक लोग शूद्र के ही अन्तर्गत ग्रहण किये गये थे। हथौड़ कुल्हाणी तक्षणी आदि बनानेवाले लोहार और बढ़ई इसी वग के सदस्य थे। ऐसे ही तकनीकी काय करनेवालों का भिन्न-भिन्न समूह था जो अपने पारम्परिक पेशे को अपनाते थे। ऐसी अनेक शूद्र जातियाँ थी जो अपने पेशे के कारण विख्यात थी। बुनकर बढ़ई (तच्चक) लोहार (कम्मार) दन्तकार कुम्भकार (कुम्हार) आदि विभिन्न शूद्र-वर्ग थे।

वर्णव्यवस्था के समान ही बुद्धकालीन भारतीय समाज में दासप्रथा भी प्रचलित थी। बुद्ध ने भी दास मोक्ष पर जोर दिया और दास-दासी प्रतिग्रहण को अनुचित बतलाया। बौद्धसघ में सम्मिलित हो जान पर दास-दासी मुक्त हो जाते थे। किन्तु इसके अतिरिक्त दास-दासियो को अपन घरो में नौकरों और सेवकों की तरह रखनेवाले धनी लोगो के मन पर भी बद्ध के उपदेशों का प्रभाव अवश्य पडा होगा। अनेक दास-दासी सघ के सदस्य होकर और बुद्ध तथा बौद्ध भिक्षुओं की सेवा करके दासभाव से मुक्त हो जान का प्रयत्न करते थे और कभी-कभी बुद्ध के उपदेशों को सुनकर अपन दुगणों से मुक्त हो जाते थे। वत्सराज उदयन की रानी सामावती की खज्जुतरा नामक दासी रानी के लिए फल खरीदते समय कुछ सिक्के चरा लिया करती थी किन्तु बुद्ध का उपदेश सुनकर उसन चोरी करना छोड दिया और अपनी स्वामिनी को भी बुद्ध के उपदेश सुनने के लिए उत्साहित किया। रानी भी उससे प्रसन्न होकर उसे अपनी शिक्षिका और माता समान मानने लगी। विवरणी नामक एक दूसरी दासी अपनी स्वामिनी की आज्ञा से भिक्षु सघ को रोज भोजन देने के कारण स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

धम्मपद म पारिवारिक जीवन का क्रमबद्ध विवरण तो दृष्टिगोचर नहीं होता है फिर भी उस समय समाज वर्णाश्रम के अतिरिक्त अनेक परिवारो म विभक्त था। इस बात की जानकारी परोक्ष रूप से अवश्य दिखायी पडती है। ये परिवार छोटे-बडे सभी प्रकार के होते थे। सामान्य रूप से एक परिवार म माता पिता भाई-बन्धु रहा करते थे। नारी अपने कई रूपों म हमारे सामने आती है। जैसे—माता पत्नी बहन

---

१ देखिए चानना डी आर स्लेवरी इन एन्श्येण्ट इण्डिया पृ ४५।

२ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस० तैलग जिल्द १ पृ २ २।

३ महावस सम्पादित डब्ल्य गायगर पृ २१४।

४ माता पिता कयिरा अन्नेवापि च नातका। धम्मपद गाथा-सख्या ४३।

माता पुत्री पुत्रवधू वेश्या भिक्षुणी उपासिका आदि। भिक्षुणी तथा उपासिका का उल्लेख धम्मपद में प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी दृष्टिगोचर नही होता है। माताओं के लिए भगवान् बुद्ध ने कहा है कि ससार में माता पिता की सेवा करना परम सुखदायक है।

एक निवृत्तिपरक धर्म होने के कारण तथा ज्ञान साधना और निर्वाण के मूल प्रश्नों तक ही प्राय सीमित होने के कारण बौद्धधम के ग्रन्थों म तत्कालीन समाज में प्रचलित सस्कारों अथवा वैसी अन्य अनेक सस्थाओं के कहीं भी विस्तृत विवरण नही प्राप्त होते हैं यद्यपि बुद्ध जन्म मरण अथवा विवाह से सम्बन्धित अनेक सस्कारों अथवा प्रथाओं की व्यथता की ओर कुछ अस्पष्ट निर्देश अवश्य करते हैं। ऐसी स्थिति में धम्मपद के आधार पर समाज में प्रचलित सस्कारो आदि का कोई ब्योरवार विवरण नही प्रस्तुत किया जा सकता। धम्मपद म कुछ स्थल ऐसे अवश्य प्राप्त होते हैं जिनसे मृयु के उपरान्त शव क्रिया किस प्रकार की जाती थी इसकी थोडी-बहुत जानकारी उपलब्ध होती है। ग्रन्थ में कायानुपश्यना का उपदेश करते हुए भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को श्मशान में पड हुए मृतक शरीरों को देखकर अपने शरीर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का उपाय बतलाया है। भिक्षुओं को वे उपदेश देते हुए कहते हैं कि वे अर्थात् भिक्षु श्मशान म जाकर एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन के मृतको को देख जो फले हुए नीले पडे हुए पीब भरे हुए कौओं गिद्धो चीलो कुत्तो और अनेक प्रकार के जीवों द्वारा खाय जाते हुए कुछ मांससहित और कुछ मासरहित हड्डी कंकाल-वाले हैं। इस प्रकार मरे हुए शरीर को श्मशान मे फको हुई अपथ्य लौकी की भाँति कुम्हलाए हुए मृत शरीर को देखकर भिक्षु को अपने शरीर की नश्वरता के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए।

---

१ सुखामेत्तेय्यता लोके अथोपेत्तेयता सुखा॥
धम्मपद गाथा-सख्या ३३२।

२ पस्स चित्तकट बिम्ब असकाय समुस्सित।
आतुर बहुसकप्प यस्स नत्थि धव ठिति॥
वही गाथा-सख्या १४७।

यानि मानि अपत्थानि अलाबनेव सारदे।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति॥ वही गाथा-सख्या १४९।

अटठीन नगर कत मस लोहित लेपन।
यत्थजरा च मच्च च मानो मक्खो च ओहितो॥ वही गाथा-सख्या १५ ।

तुलनीय दीघनिकाय हिन्दी अनुवाद पृ १९ –१९२ सुत्तनिपात ११।८ ९ १ ११।

बौद्ध-साहित्य में खाद्य-सामग्री या भोजन को खादनीय या भोजनीय कहा गया है। भोज्य पदार्थों में दूध और दूध से बने अनेक द्रव्यों का प्रयोग होता था। दूध दही मट्ठा मक्खन और घी इनमें प्रमुख थे। दूध में चावल डालकर खीर बनाना बहुत प्रचलित था। धम्मपद में दूध से दही जमाने का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय दाल का प्रयोग किया जाता था मगर वह दाल किस चीज की है इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। भोजन और पेय को मीठा करनेवाले तत्त्वों में ईख का रस अथवा उस रस से बनाये हुए शक्कर या गुड का उल्लेख भी मिलता है। बुद्ध ने अपने अनुयायी भिक्षुओं को गुड ग्रहण करने की आज्ञा दी थी।

धम्मपद अटठकथा से तत्कालीन समाज में प्रचलित मादक पेयों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इनका उपयोग प्राय भोजों त्योहारों और मेलों के अवसर पर किया जाता था जब मित्र और परिचित आमन्त्रित होते थे। अट्ठकथा के अनुसार वत्सराज उदयन को पकड लेने के बाद अवन्तिराज चण्ड प्रद्योत तीन दिनों तक लगातार मद्यपान करता रहा किन्तु साधारणतया मद्यपान में दोष माना जाता था। शराबों की दुकानदारी करना अनुचित माना गया है। भगवान बुद्ध ने भिक्षओं को शराब पीने से मना किया था। किन्तु बीमारी के समय सुरा का उपयोग वर्जित नहीं था।

बौद्धधम वेश-धारण मात्र से ज्ञान की प्राप्ति नहीं मानता। वेश-धारण की सार्थकता इसीम है कि चित्तमलो का परित्याग हो जाय। जटा गोत्र और जन्म से

१ देखिए उपासक सी एस डिक्शनरी ऑफ अर्ली बुद्धिस्टिक मोनास्टिक टर्म्स प ७६ १७६।

२ सुत्तनिपात १।२।१८।

३ सज्जु खीरव मुच्चति। धम्मपद गाथा-संख्या ७१।

४ वही गाथा-सख्या ६४ ६५।

५ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस० तैलंग भाग ४ पृ १९९।

६ फूड ऐण्ड ड्रिक्स इन ऐंश्येण्ट इण्डिया ओमप्रकाश पृ ६ –७१।

७ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नार्मन और एल एस० तैलग भाग १ प १९३।

८ सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मि मूल खनति अत्तनो ॥ धम्मपद गाथा-संख्या २४७।

९ वही गाथा-सख्या ९१ ।

कोई ब्राह्मण नहीं होता ब्राह्मण वही है जिसमे सत्य और धर्म है। जिसमे ये गुण है वही पवित्र है। यदि चित्तराग द्वेष और मोह के मल से अपवित्र है तो जटायें और मृगछाल क्या करेंगे ? ऊपरी रूपरंग मनुष्यो की पहचान नही है। कुछ लोग तो बडे सयम की भडक दिखाकर विचरण किया करते हैं वे नकली मिट्टी के बने भडकदार कुण्डल के समान अथवा लोहे के बने सोने का पानी चढाये हुए के समान वेश बनाकर विचरण करते हैं और भीतर से मैले तथा बाहर से चमकदार होते हैं।

धम्मपद से अलकारो के विषय में कोई विशेष सूचना नही प्राप्त होती। हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि सम्भवत उस समय समृद्ध-वर्ग की स्त्रियों विशेषकर गणिकाओ म स्वणनिर्मित आभषणों का ज्यादा प्रचलन था। धम्मपद से मणिकुण्डल का उल्लेख प्राप्त होता है जो बड ही कलात्मक ढग से बने होत थ।

धम्मपद से तत्कालीन समाज म प्रचलित कुछ महत्त्वपूण प्रसाधनो की भी जानकारी प्राप्त होती है। पुरुष और नारी दोनो ही विभिन्न प्रकार के प्रसाधनो का उपयोग करते थे यद्यपि प्रमखत यह नारी के जीवन का ही अग माना जाता था। प्रसाधन म फलों और उनसे बनी मालाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था जो स्त्रियों द्वारा केश विन्यास में प्रयुक्त होती थी। केशो को स्निग्ध करने के लिए तेलों का प्रचलन था जो सम्भवत फलो से ही निर्मित होत थ। फलो से अनेक प्रकार के इत्र भी निकाले जाते थे। धम्मपद म माला बनानवाले कुशल व्यक्तियों की चर्चा है। स्वय कोसल राज प्रसेनजित की रानी मल्लिका एक मालाकार की पुत्री थी। चन्दन तगर कमल और जही आदि सुगन्धित चीजो का वणन धम्मपद म प्राप्त होता है। पेडो के

१ धम्मपद गाथा सख्या ३९३।

२ वही गाथा-सख्या ३९४।

३ प्राचीन भारतीय वेश-भषा मोतीचन्द्र पृ ४५।

४ धम्मपद गाथा-सख्या ३४५ तुलनीय थेरी गाथा क्रमश १३।४।३२९ १३।१।२५९ १३।१।२६४ १३।१।२६८ १३।४।३२९ तथा गाथा-सख्या ११६८।

५ पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।

धम्मपद गाथा-सख्या ५३।

६ चन्दन तगर वापि उप्पल अथ वस्सिकी।

वही गाथा-सख्या ५५ तथा देखिए गाथा-सख्या ४४ ४५ ५४ ५६।

मल फलों फूलों और पत्तों के रस को निकालकर उनकी गन्ध से शरीर को सुगन्धित किया जाता था।

लकडी का काम करनेवाले बढई कहलाते थे। इनका काय भवन-निर्माण और कलात्मक वस्तुए बनाने से लेकर कृषि वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित औजार खिलौना आदि का निर्माण सभी कुछ था। इसके अतिरिक्त वे रथ बलगाडी आदि के अग-प्रत्यग का निर्माण करते थे। लकडी का काय करनेवालो को धम्मपद में तच्छक या तच्छका कहा गया ह। श्रीमती टी डब्ल्यू रीज डेविडस के मत में ये रथकार अथवा यानकार ऐसी आदिवासी जातियाँ थीं जो वशानुगत रूप में रथ निर्माण या लकडी का काम किया करती थी। कृषि-कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले सभी औजार लोहे से ही बनते थे जिन्हें बनानेवालो को लोहार या कुम्भकार कहते थे। बाण बनानवाले लोगो को चापकार या उसुकार कहा जाता था। ये विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने के बाद बाण बनाते थे। मालाकार फलों की माला आदि बनाते थे और उनकी कला भी शिल्प रूप में उल्लिखित है।

धातु उद्योग मे अनकानेक लोग लगे हुए थ जिन्ह लोहार स्वणकार और कसेरा कहा जाता था। इन सबमें प्रमख लोहार होते थे जो लोहे से सम्बन्धित कार्य करत थ। लोहा और उसके तकनीकी ज्ञान तथा उसे पिघलाकर उससे विविध औजारो के बनाने की एक विकसित प्रणाली का आभास मिलता है। लोहे को साफ कर उसे कडा और मजबत बनाकर उससे विविध औजारो के बनाने की एक विकसित प्रणाली का आभास मिलता ह। लोहे को साफ कर उसे कडा और मजबत बनाकर उससे विविध औजारो का निर्माण किया जाता था। इन औजारो में युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले हथियार और सनिको के पहनने के कवच भी बनते थे। लोहे के बाण भी बनाये जाते थे। बाण बनानेवालो को इषुकार या उसुकार कहा जाता था। ये इषुकार

---

१ प्राचीन पालि-साहित्य से ज्ञात सस्कृति का एक अध्ययन त्रिवेदी कृष्ण कान्त पृ २२ अप्रकाशित शोधप्रबन्ध।

२ दारु नमयन्ति तच्छका। धम्मपद गाथा-सख्या १४५।

३ द डायलाग्स ऑफ दि बुद्ध जिल्द १ पृ १ ।

४ उसुकारा नयन्ति तेजन। धम्मपद गाथा-सख्या १४५।

५ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल उपाध्याय भरतसिंह पृ ५३ ।

६ सुत्तनिपात कासिभारद्वाजसुत्त १।४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया रैप्सन ई जे पृ १८३ प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया मेहता एन रतिबाल पृ २४५।

बड़ी दक्षता से बाण बनाते थे । धम्मपद[1] म उसुकार द्वारा बिल्कुल सीधा तीर बनाने की प्रशसा की गयी है । इस ग्रन्थ म जग लगकर लोहे के नष्ट होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है ।[2]

सुवण = सुवण्ण चाँदी = रुपिय मणि = मणि बिल्लोर = वेलर फलिक स्फटिक आदि धातुए एव रत्न मूल्यवान समझ जाते थे । इनका प्रयोग अलकार और बहुमूल्य पात्रों के निर्माण में होता था । दक्ष सुवर्णकार और उसका अन्तवासी शुद्ध और अच्छी तरह से साफ किये गये सोने से ही किसी वस्तु का निर्माण कर अपनी योग्यता प्रदर्शित करते थे । धम्मपद की एक उपमा से ज्ञात होता है कि कम्मार = सुवर्णकार बारी बारी से चाँदी के मल को साफ करता ह ।[3] यह सफाई सम्भवत किसी अम्ल की सहायता से होती थी । वस्तु विनिमय के साथ साथ उस समय सिक्कों का लेन-देन भी चलता था । उस समय के प्रमुख सिक्के कार्षापण (रुपैया) या कहापण का उल्लेख धम्मपद में प्राप्त होता है ।[4] किन्तु उसका मूल्यमान क्या था यह निश्चित नही हो पाता । धम्मपद का जो उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है उसकी अट्ठकथा के अनुसार एक कहापण बीस मासे का होता था ।[5] किन्तु बुद्धघोष की यह टीका बुद्ध के समय से लगभग एक हजार वर्षों बाद गुप्तकाल में लिखी गयी थी । बुद्धघोष का यह कथन है कि कहापण चाँदी का सिक्का होता था ।[6]

बौद्धधम में गुरुकुलों के समान ही गुरु शिष्य-परम्परा के निर्वाह की पूण चेष्टा की गयी है । भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओ को उपदेश दिया कि वे अपने गुरुओं तथा गुरुतुल्य

---

१ उज करोति मेधावी उसुकारो व तेजन ।
धम्मपद गाथा सख्या ३३ ।

२ अयसा व मल समुट्ठित तदुट्ठाय तमेव खादति ।
वही गाथा-सख्या २४० ।

३ अनुपुब्बेन मेधावी थोक थोक खणे खण ।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मल मत्तनो ॥
वही गाथा-सख्या २३९ ।

४ वही गाथा-सख्या १८६ ।

५ धम्मपद अट्ठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस तैलग जिल्द २ पृ २ ७ ।

६ वही पृ २ ७ साथ में देखिए बुद्धकालीन भारतीय भगोल उपाध्याय भरतसिंह पृ ५५१ ।

व्यक्तियों के प्रति व्यवहार में समुचित आदर अनुराग एव सत्कार दिखलावें। उपासकों को भी उपदेश दिये गये कि वे अपने माता-पिता अग्रज तथा गुरु का सम्मान करें। इस प्रकार का वन्दन मन वचन और काया का वह प्रशस्त व्यापार है जिससे पथ प्रदर्शक गुरु एव विशिष्ट साधनारत साधकों के प्रति श्रद्धा और आदर प्रकट किया जाता है। इसम उन व्यक्तियो को प्रणाम किया जाता है जो साधना-पथ पर अपेक्षाकृत आगे बढ़े हुए हैं। वन्दन के सम्बन्ध में बुद्ध-वचन है कि पुण्य की अभिलाषा करता हुआ व्यक्ति वषभर जो कुछ यज्ञ वह वनलोक में करता है उसका फल पुण्यात्माओं के अभिवादन के फल का चौथा भाग भी नही होता। अत सरलवृत्ति महात्माओं को अभिवादन करना ही अधिक श्रेयस्कर है। सदा वृद्धों की सेवा करनवाले और अभिवादनशील पुरुष की चार वस्तुए वृद्धि को प्राप्त होती हैं—आयु सौन्दर्य सुख तथा बल। धम्मपद का यह श्लोक किंचित् परिवर्तन के साथ मनुस्मृति म भी पाया जाता ह। उसम कहा गया है कि अभिवादनशील और वृद्धो की सेवा करनेवाले व्यक्ति की आयु विद्या कीर्ति और बल ये चारों बातें सदैव बढ़ती रहती हैं।

बुद्धकालीन समाज म पशु भी सम्पत्ति के रूप म माने जाते थे। उनमें कुछ पशु यथा—हाथी घोड युद्ध में भी उपयोगी थे। धम्मपद म हाथियो में महानाग तथा धनपालक नामक हाथी का उल्लेख मिलता है। जब कभी मदोन्मत्त हाथी बन्धन तोडकर भाग जाता था तो महावत उसे अकुश के द्वारा वश म किया करता था। हाथी और घोड पशुओ में श्रेष्ठ माने जात थ। इसके अतिरिक्त खच्चर और सूअर का उल्लेख भी धम्मपद म मिलता ह। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सूअर शिकार के काम आते थे।

---

१ य किञ्चियिटठ च हुत च लोके
सवच्छर यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि त न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो॥

धम्मपद गाथा-सख्या १ ८।

२ अभिवादनसीलिस्स निच्च वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुख बलं॥

वही गाथा-सख्या १ ९।

३ मनुस्मृति २।१२१।

४ धम्मपद गाथा-सख्या ३२५।

समाज में देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। पालि-निकाय से ज्ञात होता है कि देवराज इन्द्र सर्वाधिक लोकप्रिय देवता थे। इनकी पूजा करनेवालों की संख्या समाज में सबसे अधिक थी और ब्राह्मणधर्मावलम्बियों के समान बौद्ध भी इनको देवराज ही मानते थे। वे इनका उल्लेख विभिन्न नामों से करते हैं जैसे शक्र वासव मघवा आदि। मघवा शब्द का उल्लेख धम्मपद म भी प्राप्त होता है लेकिन उनके काय और निवास-स्थान का वणन उपलब्ध नहीं है। धम्मपद से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वृक्ष देवता वनदेवी चैत्य पवत कप यक्ष गन्धव नाग आदि की पूजा होती थी। वृक्षों को देवता अप्सरा नाग प्रेतात्मा आदि का निवास स्थान मानकर लोग सन्तान यश धन इत्यादि की अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए वृक्षोपासना करते थे। कतिपय लोग वृक्षवासी प्रेतात्माओं तथा नागो के भय निवारणाथ वृक्ष-पूजा करते थे। वस्तुत वृक्ष-पूजन नही होता था पूजा तो की जाती थी पूजित वृक्ष में निवास करनवाले देवता अथवा प्रतात्मा की। भारतीय ग्रामीण जनता म आज भी यह विश्वास प्रबल ह। इसी आधार पर कई वक्षो को देव-स्वरूप माना जाता है जसे — पिप्पल। जब इसको दार्शनिक आधार प्रदान किया गया तो समस्त प्रकृति परमेश्वर की अभिव्यक्ति मानी गयी पर जनता के विश्वास का आधार तो अपने मूलरूप म ही बना रहा।

धम्मपद में सावजनिक काय-सम्बन्धी उल्लेख तो नही है लेकिन इस ग्रन्थ पर लिखी गयी टीकाओं से ज्ञात होता है कि जनता सावजनिक काय म अग्रसर रहती थी और बाग लगाना उपवन का निर्माण पुल बधवाना प्याऊ बठाना कप खोदवाना और पथिकों के विश्राम के लिए धर्मशाला बनवाना उत्तम सावजनिक काय माने जाते थे। इसी प्रकार माग को साफ करना गाँवो की सफाई करना तथा सबके उपयोग के योग्य स्थलों को शुद्ध रखना महत्त्वपूण सार्वजनिक कार्य माने जाते थे।

---

१ अप्पमादेन मघवा देवान सेटठत गतो। धम्मपद गाथा-सख्या ३ ।

२ बहु वे सरण यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भय तज्जिता॥
नत खो सरणं खेम नेतं सरणमुत्तम।
नेत सरण मागम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति॥
वही गाथा-सख्या १८८ १८९।

३ उत्तर प्रदेश में बौद्धधम का विकास डॉ नलिनाक्षदत्त तथा श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी पृ १६।

४ धम्मपदट्ठकथा मघमाणवक की कथा भिक्षु धमरक्षित (अप्रकाशित)।

स्वर्ग-नरक का उल्लेख भी धम्मपद में देखने को मिलता है। भगवान् बुद्ध के अनुसार पाप-कर्म करनेवाले नरक में तथा सन्मार्ग पर चलनेवाले स्वर्ग को जाते हैं।[1] दुष्कर्म करनेवाला इस लोक तथा परलोक दोनों में दुःखी होता है। अपने कर्मों की बुराई देखकर वह शोक करता है और नष्ट हो जाता है। लेकिन पुण्य-कर्म करनेवाला इस लोक तथा परलोक दोनों में प्रसन्न रहता है तथा अपने कर्मों की पवित्रता को देखकर वह सुखी रहता है।

इस काल में शिल्पियों की अवस्था अच्छी थी। उद्योग-धन्धे सुचारु रूप से चलते थे। समाज की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। वस्त्र उद्योग पर्याप्त उन्नति पर था। कुटीर-धन्धों में लगे हुए लोग भी सुखी एवं प्रसन्न थे। व्यावसायिक केन्द्र अथवा नगर वणिक-पथों और जल-मार्गों के किनारे अवस्थित थे वाराणसी साकेत श्रावस्ती मथुरा कौशाम्बी वैशाली राजगृह चम्पा तक्षशिला कान्यकुब्ज कुसीनारा आदि ऐसे ही नगर थे। सबको अपने व्यवसाय की स्वतन्त्रता थी। समाज में आर्थिक स्थिति के अनुसार भी एक मापदण्ड था जिसके अनुसार क्षत्रिय महाशाल ब्राह्मण महाशाल श्रेष्ठि महाश्रेष्ठि अनुश्रेष्ठि और उत्तर श्रेष्ठि-पदों से धनवान लोग विभूषित थे। राजा इनका बड़ा सम्मान करते थे और अनेक कार्यों में इनसे परामर्श लिया करते थे।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर धम्मपद से सामाजिक रचना का जो चित्र प्राप्त होता है उसमें वैदिक हिन्दू वर्णव्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष का तो कोई समर्थन नहीं है किन्तु व्यवहार में प्रचलित समाज के चार वर्णों और उन वर्णों के भीतर की अनेकानेक जातियों को स्वीकृति दी गयी है। वर्ण भी कर्मप्रधान ही थे किन्तु उनमें धीरे-धीरे जन्मजात श्रेष्ठता एवं हीनता की भावना घर करती आ रही थी जिसका कि पीछे तथागत को विरोध करना पड़ा और कहना पड़ा कि व्यक्ति कर्म से ही नीच ऊँच होता है जन्म से नहीं। एक अलग वर्ण के रूप में धम्मपद में शूद्रों का कोई उल्लेख तो नहीं है किन्तु अनेक पेशेवर और हीन जातियों के रूप में इनका उल्लेख मिलता है जिन्हें कम्मकर अथवा तच्छक कहा गया है। चाण्डाल पुक्कुस और निषाद जैसी अन्य हीन जातियाँ भी थीं। इसके अतिरिक्त कुटुम्ब परिवार विवाह खान-पान

---

१ धम्मपद गाथा-संख्या १२६।

२ वही १५।

३ वही १६।

४ बुद्धिस्ट इण्डिया टी डब्ल्यू रीज डेविड्स पृ ५७।

वस्त्राभूषण और सामान्य प्रयोग की वस्तुओं और समाज में स्थापित विभिन्न साधनों का भी विवरण प्राप्त होता है। धम्मपद में ब्राह्मणो की यज्ञ परम्परा के सम्बन्ध में भी सूचनाए मिलती हैं। साथ ही सामान्य लोगो के धार्मिक आचार विचार देवी देवताओं आदि की भी चर्चाए हैं।

उत्तराध्ययन में प्रतिपादित सामाजिक एव सांस्कृतिक सामग्री

धम्मपद की भाँति उत्तराध्ययन भी विशुद्ध धार्मिक ग्रन्थ है पर कलेवर में किञ्चित बड़ा होने और यत्र-तत्र विवरणात्मक तथा सवाद आख्यानादि सामग्री की उपस्थिति के कारण यह सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से धम्मपद की तुलना म अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध प्रतीत होता है। नीचे इस ग्रन्थ में तत्कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था पारिवारिक जीवन व्यापार शासन व्यवस्था आदि विषयों पर प्राप्त सामग्री का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। उत्तराध्ययनसूत्र के सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री के कुछ उल्लेख जैन आगम-साहित्य म भारतीय समाज नामक पुस्तक में डा जगदीशचन्द्र जैन ने किया है। यद्यपि उसमें उत्तराध्ययनसूत्र के सन्दर्भों का भी उल्लेख हुआ ह किन्तु वह एक व्यापक दष्टि से लिखा गया ग्रन्थ है। उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन नामक ग्रन्थ म डॉ सुदशनलाल जैन ने उत्तराध्ययन में उपलब्ध सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री की विस्तार से चर्चा की है। उनका यह विवेचन सुव्यवस्थित एव व्यापक ह। उत्तराध्ययन की प्रस्तुत सामाजिक एव सास्कृतिक चर्चा म हम उन्हीके इस विवेचन को आधारभत मानकर चर्चा कर रह हैं। यद्यपि अनक सन्दर्भों म हमें अन्यत्र से भी जो सामग्री उपलब्ध हुई है उसका भी हमने उपयोग किया ह।

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णव्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मरुदण्ड था। उत्तराध्ययन के युग में मुख्य रूप से दो प्रकार की जातियाँ थी एक आर्य दूसरी अनार्य और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण थे। ग्रन्थ म सदाचरण करनेवाले को आर्य और सस्कारहीन तथा सदाचरण से दूर रहनवाले को अनाय कहा गया है। आर्यों के

---

१ जन आगम-साहित्य म भारतीय समाज जैन जगदीशचन्द्र पृ २२१।

२ कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्से कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥
उत्तराध्ययन २५।३३।

३ उवहसन्ति अणारिया — वही १२।४।
रमए अज्जवयणं मित वय बममाहण। — वही २५।२ ।
चरित्ता धम्म मारिय। — वही १८।२५।

पाँच भेद थे—क्षेत्र आर्य जाति आर्य कुल आर्य कर्म आर्य भाषा आर्य।[1] उस समय आश्रम-व्यवस्था भी थी। गृहस्थाश्रम को उत्तराध्ययन में घोराश्रम कहा गया है।[2] बाकी तीन आश्रमों का उल्लेख सीधे रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्रत्येक वर्ण और आश्रमवालों के कार्य भिन्न थे।

उत्तराध्ययनसूत्र में और सामान्यरूप से प्राचीन जैन-साहित्य में विभिन्न वर्णों जातियों आदि के विषय में निम्न प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है—

१ ब्राह्मण

चारों वर्णों में ब्राह्मणों की प्रमुखता थी। अधिकांश ब्राह्मण जैनधर्म के विरोधी थे अत जैनधर्म में ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों को श्रेष्ठता प्रदान की गयी।[3] तीर्थंकर क्षत्रिय-कुल में ही उत्पन्न होते हैं। इसी कारण महावीर को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में परिवर्तित किया गया।[4] लेकिन उत्तराध्ययनसूत्र में कही भी ब्राह्मणों को क्षत्रियो से निम्नकोटि का नही बताया गया है। अपितु उसे वेदवित यज्ञार्थी ज्योतिषांग विद्या के ज्ञाता और धर्मशास्त्रों के पारगामी स्वात्मा और पर के आत्मा का उद्धार करने का अपने म सामर्थ्य रखनेवाला सर्वकामनाओ को पूर्ण करनेवाला तथा पुण्यक्षेत्र आदि विशेषणो से अलकृत किया गया है।[5] आगम साहित्य म अनेक स्थानों पर श्रमण और ब्राह्मण शब्द का प्रयोग एक साथ किया गया है जिससे यह भी प्रतीत होता ह कि दोनों का समान रूप से आदरणीय स्थान था।[6]

---

१ जैन आगम-साहित्य मे भारतीय समाज पृ २२१।

२ घोरासम चइत्ताणं। उत्तराध्ययन ९।४२।

३ निशीथचूर्णि ४८७ की चूर्णि आवश्यकचूर्णि पृ ४९६ जन आगम-साहित्य म भारतीय समाज पृ २२४।

४ कल्पसूत्र २।२२ आवश्यकचर्णि प २३९ तुलनीय डॉ जी एस घुय कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया पृ ६३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९३।

५ जेय वेयविऊ विप्पाजन्नटठा यजे दिया।
जोइ सगविऊ जेय जेय धम्माण पारगा ॥
जे समत्था समुद्धत्तु पर अप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देय भो भिक्खू सव्वकामियं ॥
उत्तराध्ययन २५।७-८ तथा १२।१३।

६ आवश्यकचर्णि पृ ७३ तुलनीय संयुत्तनिकाय समणब्राह्मणसूत्र २ पृ १२९।

उत्तराध्ययनसूत्र में ब्राह्मण के लिए माहण शब्द का उल्लेख है जिसका अर्थ डॉ० सुदर्शनलाल जैन ने 'मतमारो किया है। उस युग म ब्राह्मणो म यज्ञ-माग का प्रचलन था। वे अपने विद्यार्थियों के साथ इधर-उधर परिभ्रमण भी करते थे। उत्तराध्ययनसूत्र में भी विजयघोष ब्राह्मण के यज्ञ का उल्लेख है। जयघोष और विजयघोष नाम के दो भाई थे। जयघोष मुनि बन गय। विजयघोष ने यज्ञ का आयोजन किया। मुनि जयघोष यज्ञवाट में भिक्षा लेने गये। यज्ञ-स्वामी ने भिक्षा देने से इन्कार कर दिया और कहा कि यह भोजन केवल ब्राह्मणों को ही दिया जायगा। तब मुनि जयघोष ने समभाव रखते हुए उसे ब्राह्मण के लक्षण बताये।

क्षत्रिय

क्षत्रिय युद्ध-कला म निष्णात होते थे। प्रजा की रक्षा करना इनका परम कर्तव्य माना जाता था। उत्तराध्ययनसूत्र म एसे अनेकश क्षत्रिय राजाओ का उ लेख

---

१ उत्तराध्ययन २५।१९ २ २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३४।

२ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३९३।

३ के एत्थ खत्ता उवजोइया वा अज्झावया वा सह खण्डिएहिं।
एय खु दण्डण फलेण हन्ता कण्ठम्मिघेत्तण खलेज्ज जोन ?॥
अज्झावयाण वयणं सुणत्ता उद्धाइया तत्थ बहूकुमारा।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव समागया त इसि तालयन्ति॥
उत्तराध्ययन १२।१८ १९।

४ वही २५वां अध्ययन।

५ इषकार राजा–उत्तराध्ययन १४।३ ४८ उदायन राजा–वही १८।४८ करकण्ड–वही १८।४६ ४७ काशीराज–वही १८।४९ केशव–वही २२।, ६ ८ १ २७ ११।२१ कौशल राजा–वही १२।२ २२ जय–वही १८।४३ दशार्णभद्र–वही १८।४४ द्विमुख–वही १८।४६ ४७ नग्गति–वही १८।४६ ४७ ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती वही १३वां अध्ययन भरत–वही १८।३४ भोगराज–वही २२।८ ४४ मघवा–वही १८।३६ मृगापुत्र–वही १९वां अध्ययन महापद्म–वही १८।४१ महाबल राजा–वही १८।५१ रथनेमी–वही २२।३४–४४ राम–वही २२।२ २७ बलभद्र–वही १९।१ २ वासुदेव–वही २२।१–३ ७ विजय–वही १८।५ श्रेणिक राजा–वही २ ।२ १ १४ १५ ५४ सगर–वही १८।३५ सनत्कुमार–वही १८।३७ सजय राजा–वही १८वां अध्ययन समुद्रविजय–वही २२।३ ३६ ४४ हरिषेण राजा–वही १८।४२।

मिलता है जो धन वैभव आदि का परित्याग कर दीक्षा लेकर मुक्ति को प्राप्त हो गये। राजा अपने भुजबल से देश पर शासन करता था। वह सर्वसम्पन्न व्यक्ति होता था। छत्र चामर सिंहासन आदि राज चिह्न थे। राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था। यदि वह विरक्त हो जाता तो लघु पुत्र को भी राज्य-सिंहासन दे दिया जाता था। राजकुमार यदि दुर्व्यसनों में फँस जाता तो उसे देश से निकाल दिया जाता था।

वैश्य

गृहपतियों को इब्भ श्रेष्ठी और कौटम्बिक नाम से भी पुकारा गया है। कितने ही गृहपति भगवान् महावीर के परमभक्त थे। उनके पास अपार धन-सम्पत्ति थी। वे खेती और व्यापार करते थे। व्यापार करने के कारण इन्हें वणिक भी कहा जाता था। उस समय व्यापार जहाजों के द्वारा भी चलता था। उत्तराध्ययन म कुछ ऐसे प्रसग मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि ये लोग व्यापार करते हुए विदेश में शादी भी कर लेते थे तथा व्यापार-सम्बन्धी काम समाप्त हो जाने पर उस विवाहिता स्त्री को साथ लेकर अपने देश लौट आते थे। ये लोग ७२ कलाओं का अध्ययन करते थे तथा नीतिशास्त्र में भी निपुण थे। ये लोग दोगुन्दक नामक देव के समान विघ्नरहित होकर सुखों का उपभोग करते थे। कौशाम्बी नाम की नगरी में निवास करनेवाले अनाथी मुनि के पिता अधिक धन का सचय करने से प्रभूतधनसचय नाम से जाने जाने लगे। इससे पता चलता है कि ये लोग प्राय चतुर धनाढ्य और विवेकशील

---

१ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तिपत्र ४८९ तथा २२।११।

२ वही सुखबोधावृत्तिपत्र ८४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९६।

३ महावीरस्स भगवओ सीसे सोउमहप्पणो ॥ उत्तराध्ययन २१।१।

४ चपाए पालिएनाम सावए आसि वाणिए। वही २१।१ ३५।१४।
पिहुडे ववहरतस्स वाणिओदेइ धूयर।
त ससत्त पइगिज्झ सदेसमहपत्थिओ ॥ वही २१।३।

५ बावत्तरीकलाओय सिक्खिए नीइकोविए। वही २१।६।
तस्स रूववइ भज्जं पिया आणइ रुविणीं।
पासाए कीलए रम्मे देवो दोगुदगोजहा ॥ वही २१।७।

६ कोसम्बी नाम नयरी पुराणपुर भेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झपभयधण संचओ ॥ वही २ ।१८।

विभिन्न जातियाँ एवं गोत्रादि

उत्तराध्ययनसूत्र में प्राप्त अनेक सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि वर्णों के अतिरिक्त बहुत सारी छोटी-छोटी उपजातियाँ भी थीं। जैसे—सवार[1] भारवाहक कर्षक[3] सारथि बढ़ई लोहकार[1] गोपाल भण्डपाल चिकित्साचार्य नाविक और विविध प्रकार के शिल्पी आदि। इनके अतिरिक्त कुछ वर्णसंकर जातियों का भी उल्लेख मिलता है जैसे बुक्कुस और श्वपाक।

उत्तराध्ययनसूत्र म उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त गोत्रों कुलो और वशां आदि का भी उल्लेख मिलता है। गोत्रों में काश्यप गौतम गर्ग और वशिष्ठ कुलों में

---

१ हयमदद व वाहए। उत्तराध्ययन १।३७।

२ अबले जह भारवाहए। वही १।३३।

३ थले सु बीयाइ ववन्ति कासगा। वही १२।१२।

४ अह सारही विचिन्तेइ। वही २७।१५ तथा देखिए—वही २२।१५ १७ आदि।

५ वडढईहि दुमो विव। वही १९।६६।

६ चवेडमुट्ठिमाईहिं कुमारेहिं अय पिव।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो चुण्णिओ य अणन्तसो॥ वही १९।६७।

७ गोवालो भण्डवालो वाजहातद्दव्वडणिस्सरो। वही २२।४६।

८ वही।

९ उवट्ठिया मे आयरिया विज्जा-मन्तति गिच्छगा। वही २ ।२२।

१ जीवो वुच्चइ नाविओ। वही २३।७३।

११ माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो। वही १५।९।

१२ महावीरेण कासवेण पवइए। वही २९ का प्रारम्भिक गद्य तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९८ ३९९।

१३ तहा गोत्तेण गोयमो। उत्तराध्ययन १८।२२ तथा २२।५।

१४ थरे गणहरे गग्गे। वही २७।१।

१५ वासिट्ठि! भिक्खायरियाइ कालो। वही १४।२९।

ग्रहण करने लगता था तो उसके माता-पिता असह्य वेदना का अनुभव करते थे। कुछ माता-पिता ऐसे भी थे जो पुत्र के साथ ही साथ दीक्षा ग्रहण कर लेते थे। उत्तराध्ययनसूत्र के १४वें अध्ययन में प्राप्त भृगु पुरोहित की कथा से यह स्पष्ट होता है। भृगु पुरोहित के दोनों पुत्रों को जब साधुओं ने प्रतिबोध दिया तो उन्होंने संयम लेने का निर्णय किया और माता-पिता को अपने इस निर्णय की सूचना दी। पहले तो माता पिता ने बहुत कुछ समझाया किन्तु जब देखा कि वे नहीं मान रहे हैं तो भृगु पुरोहित ने अपनी पत्नी यशा से इस प्रकार कहा— जिस प्रकार वृक्ष अपनी शाखाओं से ही शोभा को प्राप्त होता है और शाखाओं के कट जाने से उसकी सारी रमणीयता समाप्त हो जाती है उसी प्रकार पुत्रों के बिना मेरा इस घर में रहना अब ठीक नहीं है। जैसे इस लोक में परों से रहित पक्षी रण में सेना के बिना राजा एवं जहाज के डूबने से धनरहित वणिक अत्यन्त दुःखी होता है उसी प्रकार पुत्रों के बिना मुझे भी अनेक प्रकार के कष्टों का अनुभव करना पड़ेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त संकेतों से यह पता चलता है कि पुत्र और पति के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर पत्नी भी घर में रहना उचित नहीं समझती थी तथा इन दोनों के साथ ही संयम-व्रत ग्रहण कर लेती थी।

भाई भाई में अटूट प्रेम होता था। पुरिमतालनगर के विशाल श्रेष्ठि-कुल में उत्पन्न चित्तमुनि पाँच पूर्वजन्मों में अपने भाई ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के साथ साथ उत्पन्न होता है परन्तु छठे जन्म में पृथक्-पृथक् हो जाता है। पुनः काम्पिल्यनगर में एक बार भेंट होने पर दोनों अपने सुख-दुःख का हाल कहते हैं। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अपना वैभव चित्तमुनि को देना चाहता है लेकिन वह उसमें प्रलोभित नहीं होता है। वह ब्रह्मदत्त को उपदेश देता है लेकिन जब वह धर्मोपदेश का पालन नहीं करता तब वह अपना उपदेश व्यर्थ समझकर वहाँ से चला जाता है और कठिन तपस्या के द्वारा मुक्ति

---

१ पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो वासिट्ठि ! भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं॥

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी भिच्चा विहूणो व्व रणे नरिन्दो।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि॥

उत्तराध्ययन १४।२९-३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४१४ २।

२ पव्वेस्सन्ति पुत्ता य पई य मज्झं तेहं कहं नाणुगमिस्समेक्का।

उत्तराध्ययन १४।३६।

शरीर पर विलेपन करना एव पुष्पमाला आदि का पहनना इन सब वस्तुओं का परित्याग कर दिया था। परन्तु इतनी समवेदना प्रकट करने पर भी वह अपने पति को दु ख से छुड़ाने म सफल न हो सकी।[1] इस प्रकार व्यमिरूप से कुलीन स्त्री के गुणों का भी वर्णन किया गया है। आदर्श नारी के रूप म परिवार म पतिव्रता नारी का प्रथम स्थान था। राजीमती इसी प्रकार स्त्रीजनोचित सवलक्षणों से युक्त थी। अर्थात् कुलीन और सुशील स्त्रियो में जो गुण और लक्षण होने चाहिए वे सब उसमें विद्यमान थे। जिस समय राजीमती को पशुओ की दीनदशा को देखकर विवाह का सकल्प छोड़कर अरिष्टनेमि के वापस लौटने और दीक्षा ग्रहण करने का समाचार मिला उस समय उसका सारा ही हष विलीन हो गया और शोक के मारे वह मच्छित हो गयी। लेकिन अरिष्टनेमि के महान् वैरा य की बात सुनकर वह भी अनेक राजक याओं के साथ दीक्षित हुई तथा ससार से विरक्त हो गयी। अत भारत का मुख उज्ज्वल करनेवाली रमणियो में राजीमती का स्थान विशेष प्रतिष्ठा को लिय हुए है। इस प्रकार बहुत सी सहचरियो को दीक्षा देकर और उनको साथ लेकर भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करन के लिए वह रैवतक पवत पर जा रही थी। अचानक जोर की वर्षा न सभी को सुरक्षित स्थान खोजने के लिए विवश कर दिया। सब इधर उधर तितर बितर हो गयी। राजीमती एक गुफा में पहुची जहाँ रथनेमि ध्यान में लीन खड थे। रथनमि ने राजी मती को देखा और सासारिक विषय भोगो का आनन्दपूर्वक सेवन करने की अभ्यथना की। तब राजीमती ने स्पष्ट कहा— रथनमि! मैं तुम्हारे ही भाई की परि यक्ता हूँ और तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो? क्या यह वमन किये को फिर चाटन के समान घणास्पद नही है? तुम अपने और मेरे कुल के गौरव को स्मरण करो। इस प्रकार के अघटित प्रस्ताव को रखते हुए तुम्ह लज्जा आनी चाहिए। राजीमती की

---

१ भारिया मे महाराय! अणरत्ता अणुव्वया।
असुपुण्णहिं नयणहि उर मे परि सिंचई॥
अन्नपाण च ण्हाण च गन्ध-मल्ल विलेवण।
मए नायमणाय वा सा बाला नोवभजई॥

उत्तराध्ययन २ ।२८ २९ तथा

उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ ४।

२ पक्खदेजलिय जोइ धूमकेउं दुरासय।
नेच्छन्ति वतय भोत्तु कुले जाया अगधणे॥
धिरत्थुतेजसो कामी! जोत जीवियकारणा।
वन्त इच्छसि आवेउं सेय ते मरण भवे॥

उत्तराध्ययन २२।४२ ४३।

का भी प्रयोग किया जाता था। लेकिन ग्रन्थ में अनेकवा पक्षियों का उल्लेख मिलता है जो पाले नही जाते थे यथा—चमगादड हस चकवा समुद्र-पक्षी (जिनके पख सदा अविकसित रहते ह और ड बे के आकार सदश सदा ढँके रहते है) वितत पक्षी (जिनके पंख सदा खले रहत हैं) बकरे का प्रयोग मेहमान के भोजन के लिए किया जाता था। पशओ को कण ओदन और यवस (मग उडद आदि धान्य) दिये जाते थे। चावलों की भसी अथवा चावल मिश्रित भसी पुष्टिकारक तथा सअर का प्रिय भोजन था।

भारतीय व्यापारी अ तर्देशीय व्यापार म दक्ष थे। व किराना लेकर बहुत दूर दूर तक जाते थे। चम्पा नगरी का वणिक पालित चम्पा से नौकाओं म माल भरकर रास्ते के नगरो म व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर म पहचा। वस्तु को खरीदन और बेचनेवाले को वणिक कहा जाता था। व्यापार म कभी कभी मूलधन ही शेष बचता था। व्यापार करना मख्य रूप से वणिक का ही काय माना जाता था। यापारी अपना माल भरकर नौकाओ व जहाजो से दूर दूर देशो म जाते थ। कभी कभी तफान

१ नाहरम पक्खिणिपजरे वा।

उत्तराध्ययन १४।४१ तथा १९।६३ आदि तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प ४१४।

२ चम्म उलोमपक्खीय तइया समुग्गपक्खिया।
विययपक्खीयबोधव्वा पक्खिणो य चउव्विहा॥

उत्तराध्ययन ३६।१८७।

३ अयकक्करभोईय तदि ले चियलोहिए।
आउय नरए कखे जहाएस व एलए॥

वही ७।७।

४ ओयण जवस दे जापोसेज्जा विसयगण।

वही ७।१।

५ वही १।५।

६ वही २१।२।

७ विक्किणन्तोय वाणिओ। वही ३५।१४ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प ४१८।

८ एगोत्थ लहई लाभ एगो मूलेणआगओ। उत्तराध्ययन ७।१४।

९ एगोमलपि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ। वही ७।१५ २३।७ –७३।

५ कण्णुहर — कन्याओं का अपहरण करनेवाले।

लोमहार अत्यन्त क्रूर होते थे। वे अपने आपको बचाने के लिए मानवों की हत्या कर देते थे। ग्रन्थि भेदक के पास विशेष प्रकार की कचियाँ होती थीं जो गाँठों को काटकर धन का अपहरण करते थे। नगर की सुरक्षा के लिए जो साधन काम में लिये जाते थे उनमें से कुछ के नाम प्रस्तुत सूत्र म मिलत है —

प्राकार	धलि अथवा इटो का कोट।
गोपुर	प्रतोलीद्वार या नगरद्वार।
अट्टालिका	प्राकार कोष्ठक के ऊपर आयोधन स्थान अर्थात् बुज।
उत्सूलक	खाइयाँ या ऊपर से ढके गर्त।

उस युग म प्राय साम्राज्य को विस्तृत करने की भावना से युद्ध हुआ करते थे। युद्ध म विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए रथ अश्व हाथी और पदाति ये अत्यन्त उपयोगी होते थे। युद्ध म घोडो का भी अत्यन्त महत्त्व था। वे तेज तर्रार होत थे। शत्रु सेना म घुसकर उसे छिन्न भिन्न कर देत थे। घोड अनक किस्म के होते थ। कम्बोज देश के आकीण और कन्थक घोड प्रसिद्ध थे। आकीण की नस्ल ऊँची होती थी और कथक पत्थर आदि के श द से भी भयभीत नही होते थे। युद्ध मे हाथी की अनिवाय आवश्यकता रहती थी। हाथी भी अनक जातियो के होत थे। गन्धहस्ती सर्वोत्तम हस्ती था। उसके मल-मूत्र म इतनी ग ध होती थी कि उससे दूसरे सभी हाथी मदोन्मत्त हो जाते थे। वह जिधर जाता सारी दिशाए ग ध से महक उठती थी।

उस समय यद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था जिनका नामोल्लेख प्रस्तुत सूत्र में हुआ है—असि शत्घनी करपत्र क्रकच कुठार कल्पनी

---

१ अन्नदत्तहरे तेणेमाई कण्हुहरेसढे। — उत्तराध्ययन ७।५

२ पागार कारइत्ताण गोपुरट्टालगाणिय उस्सूलग।

वही ९।१८ तथा ९।२ –२२।

३ हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य।
पायत्ताणीए महया सव्वओपरिवारिए॥

वही १८।२।

४ वही ११।१९।

५ मत्त च गन्धहत्थि वासुदेवस्स जेट्ठगं। — वही २२।१।

गदा त्रिशूल क्षुरिका भल्ली पट्टिस मुसण्डी मुद्गर मूशल शूल अंकुश वादित्र लौहरथ आदि।

उत्तराध्ययन में दास को भी एक काम-स्कन्ध माना गया है। उसका अर्थ है कामना-पूर्ति का हेतु। चार काम-स्कन्ध ये हैं—

१ क्षेत्र-वास्तु भूमि और गृह।
२ हिरण्य सोना चाँदी रत्न आदि।
३ पशु और
४ दास पौरुष।

जिस प्रकार क्षेत्र-वास्तु हिरण्य और पशु क्रीत होते थे उसी प्रकार दास भी क्रीत होते थे। इनका क्रीत सामग्री के रूप म उपयोग किया जा सकता था। दासो को स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त नही था।

वह युग धार्मिक मतवादो का युग था। बाह्य वर्णों और आचारों के आधार पर भी अनेक मतवाद प्रचलित थे। आदिकाल के मानव ऋजु–जड थे। अर्थात भगवान ऋषभ के समय के मानव सरल प्रकृति के तो थे किन्तु उन्हें अर्थ-बोध बहुत कठिनाई से होता था। विनीत होने पर भी विवक की कमी थी। मध्यकाल के मानव ऋजु–प्राज्ञ थे। सरल होने के साथ बुद्धिमान भी थे। उनके जीवन में विनय और विवेक दोनों का सामजस्य था। किन्तु महावीर-युग के मानव वक्र जड थे। अर्थात् कुतर्क करनेवाले तथा विवेक से हीन थे। जन जन के मन में धम के प्रति निष्ठा प्रतिदिन कम होती जा रही थी। हिंसा झूठ लूट-पाट चोरी मायाचारी शठता कामासक्ति धनादि-सग्रह में आसक्ति मद्य मास भक्षण पर-दमन अहकार लोलपता आदि दुगण

---

१ असीहि अयसिवण्णाहिं भल्ली हिंपट्टि सेहि य। उत्तराध्ययन १९।५५ ३८।
अवसोलोहरह जुत्तो जलन्ते समिलाजुए। वही १९।५६।
मुग्गरेहिं मुसढीहिं सूलेहिं मुसलेहिय। वही १९।६१।
तवनारायजुत्तेण भेत्तूण कम्मक चुय। वही ९।२२।
खुरेहि तिक्खधारेहि छुरियाहिं कप्पणीहिय। वही १९।६२।
तथा इसके लिए देखिए—वही ३४।१८ १९।५७ २१।५७ २२।१२ २।४७ २७।४–७ आदि।

२ खेत्त वत्थ हिरण्णं च पसवो दास-पोरुस।
चत्तारि काम-खन्धाणि तत्थ से उववज्जई॥
वही ३।१७।

३ पावदिट्ठी उ अप्पाण सासं दासव मन्नई। वही १।३९।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय जाति और वर्ण के आधार पर सामाजिक सगठन था। जात-पाँत की बीमारी बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई थी। शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सर्वत्र उनका निरादर होता था। ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। व धम के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन दे रहे थे। वे वेदो के वास्तविक रहस्य को नही जानते थे। क्षत्रिय और वश्यो के पास बहुत धन था। क्षत्रिय प्रजा का पालन करते और भोग विलासो म भी निमग्न रहते थे तथापि कुछ क्षत्रिय राजा जैन-दीक्षा भी लेते थे। वैश्य भारत म ही नही अपितु विदेशो में भी व्यापार हेतु जाते थे।

परिवार म माता पिता का स्थान सर्वोपरि था। परिवार के पालन-पोषण का दायित्व पिता पर था। पुत्र के प्रति सभी का स्वाभाविक स्नेह था। उसके बिना घर सूना-सूना था। पिता की मृत्यु के पश्चात वही परिवार का ध्यान रखता था। उसके दीक्षा लेने पर माता पिता को कष्ट होना स्वाभाविक था। नारियो की स्थिति भी ग भीर थी। वह भोग विलास की साधन मानी जाती थी। पुरुष जसा चाहता वसा कठपुतली की तरह उसको नचा सकता था परन्तु कितनी ही नारियाँ नर से भी आग थी वे पुरुषो का भी प्रतिबोध देती थीं। विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। पुत्र और पुत्रियो के अधिकांश सम्बन्ध पिता ही निश्चित किया करता था। स्वयवर और गन्धव विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। बहु विवाह भी होते थे। कभी व्यापार के लिए विदेश म जानवाले वही पर विवाह कर लेते थे। कुछ दिन घरजमाई भी रह जाते थे। विवाह का कोई निश्चित नियम नही था किन्तु सुविधा के अनुसार विवाह कर लेते थे। किसीके मर जाने पर उसका दाह-सस्कार करने का प्रचलन था। दाह सस्कार प्राय पिता या पुत्र किया करता था।

आजीविका के लिए या युद्ध आदि के लिए पशु और पक्षियों का पालन किया जाता था। हाथी घोडा गाय बल आदि प्रमुख थे। भोजन मे घी दूध दही मिष्टान्न फल अन्न मुख्य था। कुछ लोग मास और मदिरा का भी उपयोग करते थे। क्षत्रिय लोग युद्ध म निपुण होते थे। वे चतुरगिणी सेना के साथ युद्ध करते थे। विविध प्रकार के अस्त्र और शस्त्र का भी उपयोग होता था। वैश्यो के साथ कभी-कभी उनकी पत्नियाँ भी समुद्र-यात्रा करती थी।

समाज में सुख और शान्ति का सचार करने के लिए शासन-व्यवस्था थी। शासन का अधिकार क्षत्रियो के हाथों में था। शासन करनेवाला व्यक्ति राजा के नाम से अभिहित किया जाता। वह देश की उन्नति का ध्यान रखता था। कभी-कभी अधिकार के नशे में पागल बनकर अपन कतव्य को भी वह विस्मृत हो जाता था। शत्रुओं का सदा भय बना रहता था।

चोर और डाकुओं का भी उपद्रव था उन्हें पकड़कर दण्ड देने के लिए न्याय व्यवस्था थी। अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी अपराधी को मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। वध-स्थान पर ले जाते समय अपराधी को एक निश्चित वेश भूषा धारण करवाकर नगर म घुमाया जाता जिससे अन्य लोग इस प्रकार का अपराध न करें।

मानव की प्रवृत्ति त्याग-वैराग्य से हटकर भोग विलास की ओर अधिक थी। सन्तगण उन्हें सदा उद्बोधित करते रहते। अनेक धार्मिक दार्शनिक सम्प्रदाय थे। इन सबम श्रमण और ब्राह्मणों का आधिपत्य था। श्रमणो के त्याग-वैराग्य और उग्र तप का सवत्र स्वागत होता था। राजा भी उनके कोप से डरते थे। चारों वणवाले जैन श्रमण होते थे किन्तु क्षत्रिय और ब्राह्मण अधिक थे।

इस तरह उत्तराध्ययन में समाज और सस्कृति का जो सामान्य चित्रण मिलता है वह तत्कालीन अन्य ग्रन्थो का अवलोकन किए बिना पूर्ण नही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उत्तराध्ययन के मख्यत धार्मिक ग्रन्थ होने से तथा किसी एक काल-विशेष की रचना न होने से इसम चित्रित समाज व सस्कृति से यद्यपि किसी एक काल विशेष का पूर्ण चित्र उपस्थित नही होता है फिर भी तत्कालीन समाज एव सस्कृति की एक झलक अवश्य मिलती है।

इस तरह दोनों ग्रन्थों का सूक्ष्म अवलोकन करने पर पता चलता है कि तत्कालीन समाज-व्यवस्था की एक झलक इनमें अवश्य मिलती है। यह निश्चित है कि उस समय समाज चार वर्णों म विभक्त था जाति-प्रथा का जोर था ब्राह्मणो का आधिपत्य था प्रजा धनसम्पन्न थी शूद्रों की स्थिति चिन्तनीय थी नारी विकास की ओर कदम उठा रही थी तथा धार्मिक एव दार्शनिक मतान्तर काफी थे। गौतम बुद्ध एव महावीर स्वामी के कारण इनम महत्त्वपूर्ण सुधार हुए और इन्हें नवीन प्रेरणा भी मिली।

ग्रन्थ सूची

अंगुत्तरनिकाय — सम्पा आर मोरिस ई हार्डी एवं मेबेल हण्ट पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८५–१९१ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९६ हिन्दी अनुवाद अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन कलकत्ता ई स १९५७।

अटठसालिनी — सम्पा डॉ पी वी बापट और आर डी वाडकर प्रथम सस्करण पूना १९४२।

अभिधमकोशम — (भाष्य एव व्याख्यासहित) सम्पा स्वामी द्वारिका दास शास्त्री वाराणसी १९७१।

अभिधमकोश — (फ्रेन्च अनु) आचार्य नरेन्द्रदेव इलाहाबाद १९५८।

अभिधमकोश — सम्पा राहुल साकृत्यायन काशी विद्यापीठ वाराणसी वि स १९८८।

अभिधमकोश भाष्य — सम्पा प्रहलाद प्रधान पटना १९६७।

अभिधम्मत्थसग्गहो — (प्रकाशिनी टीका) सम्पा भिक्षु रेवतधम्म एव रमाशकर त्रिपाठी वाराणसी १९६७।

अभिधम्मत्थसग्गहो — आचाय अनुरुद्ध सम्पा धर्मानन्द कौशाम्बी सारनाथ १९४१।

अभिधान चिन्तामणि — हेमचन्द्र भावनगर वि स २४४१।

अभिधान राजेन्द्रकोश — (सात खण्ड) श्री विजय राजेन्द्रसूरिजी रतलाम वि स २४५ ।

अर्थविनिश्चयसूत्रनिबन्धनम — सम्पा डा एन एच साम्तानी पटना १९७१।

अनुत्तरोपपातिक दशा — हिन्दी टीकासहित आत्मारामजी लाहौर १९३६।

अर्ली मोनास्टिक बुद्धिज्म — नलिनाक्ष दत्त कलकत्ता १९६ ।

आगम और त्रिपिटक एक अनशीलन खड १ और २ — मुनि श्री नागराजजी कलकत्ता १९६९।

आउट लाइन्स ऑफ जैनिज्म — जे एल जैनी कैम्ब्रिज १९१६।

आप्तमीमांसा — प दलसुख मालवणिया बनारस १९५३।

उदान — सम्पा सैन्थाल पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८५
सम्पा भिक्ष जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९।

उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास — डॉ नलिनाक्ष दत्त तथा श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी लखनऊ १९५६।

उत्तर वदिक समाज एव सस्कृति — विजय बहादुर राव वाराणसी १९६६।

ए हिस्ट्री ऑफ दि कैनोनिकल लिटरेचर — एच आर कापडिया सूरत १९४१।

ए कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ जनिज्म — ए के चटर्जी कलकत्ता १९७८।

ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म — डॉ अजयमित्र शास्त्री वाराणसी १९७५।

ऐक्सपेक्टस आफ अर्ली जैनिज्म — डा जयप्रकाश सिंह वाराणसी १९७२।

ऋग्वेद — प्रका श्रीपाद सातवलेकर भारत मुद्रणालय औन्ध नगर १९४ ।

कल्पसूत्र — बम्बई १९३८ ई सिवान १९६८ ई ।

कथावत्थ — भिक्ष जगदीश काश्यप देवनागरी सस्करण १९६१।

कमग्रन्थ — (कम विपाक) देवन्द्र सूरि श्री आत्मानन्द जन पुस्तक प्रचारक मण्डल २४४४।

कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया — श्री जी एस घुय न्ययाक १९५ ।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया — ई जे रैप्सन दिल्ली १९५५।

खुद्दकनिकाय भाग १ — सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९।

खुद्दकपाठ — भिक्षु धमरत्न सारनाथ १९५५।

गौतमबुद्ध — आनन्द के कुमार स्वामी एव आई बी हानर, सूचना प्रकाशन विभाग देहली।

चुल्लवग्ग — सम्पा भिक्ष जगदीश काश्यप नालन्दा १९५६।

चूल्लनिद्देश — सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९।

जातक — भदन्त आनन्द कौसल्यायन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग बुद्धाब्द २४८५।

जातककालीन भारतीय संस्कृति	वियोगी मोहनलाल महतो पटना विक्रमाब्द २ १५।
जातिभेद और बुद्ध	भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९४९।
जैन-आचार	मोहनलाल मेहता वाराणसी १९६६।
जन-दशन	न्याय विजयश्री हेमचन्द्राचाय जन सभा पाटन सन् १९५६।
जैन-दशन	महेन्द्रकुमार न्यायाचाय गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी सन् १९५५।
जन दशन	मोहनलाल मेहता स‌म्मति ज्ञानपीठ आगरा १९५९।
जन दशन मनन और मीमासा	मुनि नथमल राजस्थान १९६२।
जनधम	प कैलाशचन्द्र शास्त्री भा दि जैनसघ मथुरा वी नि स २४७४।
जनधर्म का प्राण	प सुखलाल सघवी सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली १९६५।
जैनआगम साहित्य में भारतीय समाज	जगदीशचन्द्र जैन वाराणसी १९६५।
जन-दर्शन म आत्मविचार	लालचन्द्र जैन वाराणसी १९८४।
जैनधम की एतिहासिक रूपरेखा	डॉ झिनक यादव वाराणसी १९८१।
जन-साहित्य का इतिहास (पव पीठिका)	कैलाशचन्द्र शास्त्री गणशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वी नि स २४८६।
जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास भाग २	डॉ जगदीशचन्द्र जन वाराणसी १९६६।
जैन साइकोलाजी	मोहनलाल मेहता जैनधम प्रचारक समिति अमृतसर १९५५।
जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ एव २	डॉ सागरमल जैन राजस्थान १९८२।
जैनतत्त्वकलिका	सम्पा अमरमुनि पजाब १९८२।
जैनधर्म का मौलिक इतिहास भाग १	हस्तीमल जैन जयपुर १९७१ ई

	हिन्दी अनुवाद अनुवादक राहुल सांकृत्यायन सारनाथ १९३६।
दीपवंश	सम्पा ओल्डेनबर्ग लन्दन १८७९।
दीपवंश एण्ड महावंश	विल्हेल्म गायगर कोलम्बो १९ ८।
दशवैकालिक	आत्मारामकृत हिन्दी टीकासहित महेन्द्रगढ़ वि सं० १९८९।
धम्मपद	सम्पा एस एस थेर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९१४ नारद महाथेर कलकत्ता १९७ नालन्दा देव-नागरी संस्करण अंग्रेजी अनुवाद अनुवादक एफ मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट जिल्द १ (भारतीय संस्करण) दिल्ली १९६५ एस राधा कृष्णन मद्रास १९६१ हिन्दी अनुवाद भिक्षु धर्मरक्षित मोतीलाल बनारसीदास ततीय संस्करण १९८३ सम्पा भदन्त आनन्द कौसल्यायन सारनाथ बुद्धाब्द २४८४ अवधकिशोर नारायण महाबोधि ग्रन्थमाला वि स १९९५।
धम्मपद अटठकथा	बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस तैलग ५ जिल्दो म सम्पन्न पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९ ६–१५ अंग्रेजी अनुवाद बुद्धिस्ट लीजेण्ड ई डब्ल्य बर्लिनगेम कैम्ब्रिज १९२१ भिक्षु धर्मरक्षित (अप्रकाशित) धर्मानन्द नामक स्थविर तथा ज्ञानेश्वर स्थविर द्वारा सिंहली लिपि में सम्पादित कोलम्बो १९३११
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त	भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९४९।
धम और दर्शन	देवेन्द्रमुनि शास्त्री आगरा १९६७।
धर्म और समाज	प सुखलाल सघवी बम्बई १९५१।
नन्दिसूत्र	मुनि हस्तीमलजी द्वारा सम्पादित जैन आगम ग्रन्थमाला।
नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक अध्ययन	गुलाम मुहम्मद याहया खाँ वाराणसी १९८३।
निशीथचूर्णि	जिणदास गणी सन्मति ज्ञानपीठ आगरा सन् १९५७।

बौद्धधर्म-दर्शन आचार्य नरेन्द्रदेव पटना १९५६।
बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त भिक्षु धर्मरक्षित वाराणसी १९५८।
बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य भिक्षु धर्मरक्षित वाराणसी १९५६।
बौद्धचर्या विधि भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९५६।
बौद्धयोगी के पत्र भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९५६।
बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १ तथा २ भरतसिंह उपाध्याय कलकत्ता वि स २ ११।
बौद्ध दर्शन मीमासा आचार्य बलदेव उपाध्याय वाराणसी तृतीय सस्करण १९७८।
बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक परशुराम चतुर्वेदी इलाहाबाद १९५८।
बौद्ध-सस्कृति का इतिहास डॉ भागचन्द्र जैन भास्कर नागपुर १९७२।
भगवतीसूत्र आगमोदय समिति बम्बई १९२१ ई ।
भगवान गौतमबुद्ध डॉ विद्यावती मालविका वाराणसी १९६६।
भगवान बुद्ध आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी बम्बई १९५६।
भगवान महावीर शोभनाथ पाठक भोपाल १९८४।
भारतीय दर्शन उमेश मिश्र लखनऊ १९६४।
भारतीय दर्शन भाग १ एव २ डॉ एस राधाकृष्णन् दिल्ली १९७३।
भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय वाराणसी १९४५।
भारतीय दर्शन वाचस्पति गैरोला लोक भारतीय प्रकाशन द्वितीय सस्करण १९६६।
भारतीय दर्शन नन्दकिशोर देवराज इलाहाबाद १९४१।
भारतीय दर्शन सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एव धीरेन्द्रमोहन दत्त पटना १९६१।
भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन डॉ अशोककुमार लाड भोपाल १९७३।
भारतीय दर्शन की रूपरेखा एम हिरियन्ना दिल्ली १९७३।
भारतीय संस्कृति म जैनधर्म का योगदान डॉ हीरालाल जैन भोपाल १९६२।
भारतीय सस्कृति और साधना भाग २ गोपीनाथ कविराज पटना १९६३।